राष्ट्र सेवा दल–पंचसूत्र

राष्ट्रवाद

लेखक

प्रा. सुभाष वारे

प्रकाशक

वाङ्मय विभाग,

राष्ट्र सेवा दल

राष्ट्र सेवा दल–पंचसूत्र

राष्ट्रवाद

लेखक

प्रा.सुभाष वारे

हिंदी अनुवाद

डॉ. नीला बोर्वणकर

प्रकाशक

वाङ्मय विभाग,

राष्ट्र सेवा दल

- राष्ट्र सेवा दल – पंचसूत्र
- राष्ट्रवाद
- लेखकः प्रा. सुभाष वारे
- हिंदी अनुवाद : डॉ. नीला बोर्वणकर

© राष्ट्र सेवा दल

- प्रथम आवृत्ति

  12 नवंबर 2002

- प्रकाशन वाङ्.मय विभाग

  राष्ट्र सेवा दल,

  साने गुरूजी स्मारक

  सिंहगड रस्ता – पुणे– 30

- अक्षर योजनाः

  सौ. प्रीति पराग शाह

(020) 4330037

■ मुद्रक : डायनामिक

A–5 / 30 रक्षालेखा सोसायटी,

दत्तवाडी, पुणे–30

मूल्य : रू. 20

प्रस्तावना

जनतंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण राष्ट्र सेवा दल के पंचसूत्र हैं। इन पंचसूत्रों द्वारा स्पष्ट दिशा–निर्देशन होता है कि संघर्षशील समाजवादी संगठन अर्थात राष्ट्र सेवा दल क्या करना चाहता है? पंचसूत्र पर पाँच छोटी किताबें प्रकाशित करने का इरादा राष्ट्र सेवा दल का है। इनमें से जनतंत्र, राष्ट्रवाद एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण ये किताबें क्रमशः प्रा. विकास देशपांडे (महामंत्री), प्रा. सुभाष वारे (राष्ट्रीय संघटक) तथा विनय सावंत (सचिव, महाराष्ट्र) ने लिखी हैं। इन लेखकों ने बहुत श्रमपूर्वक विषयानुसार व्यापक संदर्भों को समेटा है। इन सभी मूल्यों को आज के संदर्भ में प्रस्तुत करने की कोशिश जानबूझकर की है। मेरा विश्वास है कि इन किताबों के अध्ययन से सेवा दल सैनिकों के विचारविश्व में वृद्धि होगी। राष्ट्र सेवा दल के अलावा अन्य पाठकों के लिए भी ये किताबें उपयुक्त सिद्ध होंगी। अन्य दो किताबें शीघ्र ही उपलब्ध करा देने की कोशिश जारी है। इतना ही नहीं, सेवा दल सैनिकों को अपनी शाखाओं तथा शिविरों में उपयुक्त सिद्ध हो पाए, ऐसे वैचारिक साहित्य का विमोचन करने की इच्छा वाड्.मय विभाग की है। राष्ट्र सेवा दल के कार्य का विस्तार हो, इसलिए ये पुस्तकें हिंदी भाषा में प्रकाशित की जा रही हैं। मेरा अपना मानना है कि महाराष्ट्र के सैनिकों को हिंदी भाषा की किताबें समझने में कोई दिक्कत नहीं आएगी। मैं इन पुस्तकों के लेखकों को धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ।

एस.एम. जन्मदिन

12 नवंबर 2002

भाई वैद्य

अध्यक्ष,

राष्ट्र सेवा दल

प्रकाशक की ओर से

राष्ट्र सेवा दल के वाङ्.मय विभाग द्वारा सेवा दल पंचसूत्रों में से 'जनतंत्र', 'राष्ट्रवाद' और 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' विषय पर तीन पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। मुझे विश्वास है कि 'समाजवाद' और 'धर्मनिरपेक्षता' विषयक बाकी दो पुस्तिकाएँ यथावकाश अवश्य प्रकाशित होंगी।

सभी जानते हैं कि समताधिष्ठित समाजनिर्मिति का उद्दिष्ट रखनेवाले सेवा दल जैसे संगठन के लिए कार्यकर्ता का वैचारिक विश्व समद्ध करने की कितनी जरूरत है। इसी जरूरत को पूरा करने का प्रयास वाङ्.मय विभाग निरंतर करेगा। इस बारे में सभी सेवा दल सैनिकों के सुझावों का स्वागत है।

इन पुस्तिकाओं को थोड़े समय में सफलतापूर्वक वास्तविक रूप देने में स्वयं लेखक, हिंदी अनुवादिका डॉ. नीला बोर्वणकर, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के कार्याध्यक्ष एवं ज्येष्ठ प्राध्यापक सु.मो.शाह, श्री मणेर सर, अक्षर योजना करने वाली सौ. प्रीति पराग शाह इन सभी के योग्य दिशा में किए हुए अथक प्रयास सहायक हैं। मैं इन सभी का बहुत ही आभारी हूँ।

इन पुस्तिकाओं की कल्पना सेवा दल अध्यक्ष मा. भाई वैद्य जी की है। यह आग्रह भी उन्हीं का था कि पुस्तिका–लेखन, युवा पदाधिकारियों को ही करना चाहिए। पुस्तिका प्रकाशन के हर मुकाम पर उनके द्वारा जो मार्गदर्शन लेखकों को तथा वाङ्.मय विभाग को मिला उसके बिना यह काम असंभव था।

सेवा दल सैनिकों को मेरा अनुरोध है कि वे पुस्तिका जरूर पढ़ें, अपने सुझाव दें और सेवा दल को सशक्त बनाने के इस प्रयास में अपना योगदान दें।

धन्यवाद!

12 नवंबर 2002

सुभाष वारे

प्रमुख, वाङ्.मय विभाग

राष्ट्र सेवा दल

अनुक्रम

1. प्रस्ताविक

2. राष्ट्रवाद की संकल्पना : स्पष्टीकरण

3. राज्य और राष्ट्र

4. राष्ट्रवाद के पूरक घटक

5. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उदित जाति–धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद

6. वैश्वीकरण – राष्ट्रवाद के लिए चुनौती

7. कौन राष्ट्रभक्त – कौन राष्ट्रद्रोही?

8. राष्ट्रवाद और राष्ट्र सेवा दल

1. प्रस्ताविक :

लगभग डेढ़ सौ सालों तक अंग्रेजों की गुलामी के बाद भारत देश 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ। अंग्रेजों के आने से पहले यह देश एक राष्ट्र के रूप में स्थापित हुआ ही नहीं था। अंग्रेजी हुकूमत के कार्यकाल में भारतीय जनता का जनतंत्र तथा समाजवाद जैसी कल्पनाओं से परिचय हुआ। पहले कुछ हद तक, देश में धार्मिक–सांस्कृतिक एकता मिलती भी थी, लेकिन राजकीय परिभाषा में जिसे राष्ट्र कहते हैं उस तरह की कल्पना यहाँ पर नहीं थी। राजा का संबध आम जनता से नहीं था उसका सबंध केवल स्थानीय वतनदार और उनके दास, और जुल्म जबरदस्ती के साथ जमा किए जाने वाले लगान से ही था। और ये स्थानीय इनामदार हुकूमत बदलते ही अपनी टोपी घुमाकर नई हुकूमत को ज्यादा लगान इकट्ठा करने का वचन देते थे। जनता की तकलीफें और भी बढती थीं। यदि ''एक दूसरे के सुख–दुःख में शामिल होने की भावना'' की दृष्टि से देखा जाए तो यह देश एक नहीं था।

जैसे–जैसे अंग्रेजों के खिलाफ होने वाले स्वातंत्र्य–आंदोलन तूल पकडने लगा उस समय पहली बार भारत में इस तरह की भावना पैदा होने लगी और उसी के चलते हमें आजादी मिली। गांधीजी हमारे स्वातंत्रता संग्राम के अभूतपूर्व नेता थे इसमें कोई दो राय हो ही नहीं सकती। उन्हीं के नेतृत्व में आजादी के आंदोलन में जाति–धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की संकल्पना उभरी। गांधीजी ने अपनी अनोखी संघटनात्मक शैली से उसे लाखों भारतवासियों तक पहुँचाया। देश के कामगारों, किसानों और महिलाओं के सहयोग से आंदोलन में तेजी आई और हमें आजादी मिली।

पूज्य बाबासाहब आंबेडकरजी के नेतृत्व में संविधान समिति ने संविधान बनाया। इसने जाति, धर्म, वंश, भाषा या लिंग का भेदभाव किए बिना हर भारतीय नागरिक को अपना आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक विकास करने का अवसर प्रदान किया।

संविधान ने जो शब्दबद्ध किया अब तक वह एक सपना ही रहा। इस घृणास्पद वास्तव को बदलने के लिए इस देश की पूरी जनता को एकजुट होकर समता की राह पर मेहनत के साथ आगे चलना है। स्वतंत्र भारत में थोड़ा बहुत विकास हुआ है लेकिन

विकास की गति तथा विकास के परिणाम के समान बटवारे के बारे में असंतोष की स्थिति है।

दूसरे विश्व युद्ध से तहस–नहस हुए राष्ट्रों ने अपने पुनर्निर्माण का कार्यक्रम शुरू किया। जापान, जर्मनी, चीन आदि देशों ने जिस तरह से अपनी प्रगति हासिल की है उस तुलना में हम काफी पिछड़े हैं।

हमें जाति, धर्म तथा भाषा के भेदभाव को दूर रखकर अपने–आपको सिर्फ भारतीय कहलाने पर विश्वास करना है। एक भारतीय होने के नाते हमें इन समस्याओं पर विचार करके उनका हल ढूंडना है। हम समर्पित भाव से काम करें, उच्च कोटि की कार्यशैली को अपनाए।

आज विश्व का छोटे–से–छोटा देश भी हमसे आगे है, यह स्थिति शर्मनाक और चिंतनीय है जिसे बदलने के लिए हमें शपथबद्ध होना चाहिए।

हमारे देश की कई विशेषताएँ हैं। यहाँ, सभी की परंपरा की अच्छाईयों को अपनाने की क्षमता, ऊपजाऊ होने की संभावना वाला विशाल भूभाग, साल भर मिलनेवाला सूर्यप्रकाश और दो सौ करोड से भी अधिक हाथ। यदि हम सही दिशा में विकसित होने की एक राजकीय आकांक्षा का निर्माण करते हैं तो आज भी हमारा देश आर्थिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दुनिया का नेतृत्व कर सकता है बस जरूरी है राजकीय आकांक्षा की और जाति–धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की। इससे भारत राष्ट्र का विकास तो होगा ही साथ ही साथ दुनिया के सामने एक मिसाल भी कायम होगी।

हम ये दिखा सकते हैं कि ''जाति–धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद'' के आधार पर हर व्यक्ति को कैसे न्याय दिया जा सकता है। इस सपने को सच करने के लिए समस्याओं का अध्ययन करना होगा, यही उद्देश्य है इस पुस्तिका का।

2. राष्ट्रवाद की संकल्पना : स्पष्टीकरण

आधुनिक युग का सबसे प्रभावी विचार 'राष्ट्रवाद' रहा है। इतिहास में देखा जा सकता है कि राष्ट्रवादी भावनाओं से प्रेरित होकर व्यक्तिसमूहों ने अनेक लक्ष्य साकार कर प्रगति की है। परंतु साथ ही तीव्र राष्ट्रवादी भावना से अनेक युद्ध भी लड़े गए हैं। राष्ट्र और राष्ट्रवाद वैसे तो आधुनिक युग की संकल्पनाएँ हैं। प्राचीन युग में लोगों की निष्ठाएँ अपनी टोली, कुल, वंश अथवा प्रदेश तक ही केंद्रीभूत दिखाई देती हैं। परंतु 'राष्ट्रवाद' संकल्पना के उदय पर देखा जाता है कि अन्य सभी भावनाओं पर राष्ट्रवादी भावना ने मात की है। इसलिए भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए राष्ट्र और राष्ट्रवाद की संकलप्ना को समझना जरूरी है। विशेषतः जो कार्यकर्ता भारत को एक समर्थ, शक्तिशाली तथा समताधिष्ठित राज्य बनाने की आकांक्षा रखता है, उसके लिए तो यह नितांत जरूरी है।

राष्ट्र एक जटिल संकल्पना है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ निर्माण करनेवाली 'राष्ट्र' संकल्पना का अंग्रेजी पर्याय है नेशन (Nation) । नेशन शब्द Natia इस लैटिन शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'वंश'। अर्थात अर्थ की दृष्टि से राष्ट्र शब्द वंश से संबंधित है। परंतु व्यवहार में राष्ट्र शब्द इतने संकुचित अर्थ में नहीं है, होना भी नही चाहिए।

वैसे राष्ट्र की परिभाषा करना काफी कठिन है। क्योंकि राष्ट्र की संकल्पना एक दृष्टि से बुद्धि की अपेक्षा भावना, विकार, प्रेरणा, प्रवृत्ति आदि क्षेत्रों से संबंधित है। अनेक राज्यशास्त्रज्ञों ने 'राष्ट्र' शब्द की विविध परिभाषाएँ दी हैं, फिर भी उनमें से कोई एक संतोषजनक नहीं मानी जा सकती। परंतु इससे कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि किसी बात की परिपूर्ण परिभाषा होने पर उसे स्वीकारना यह तो विज्ञान का नियम रहा। परंतु जहाँ मनुष्य के आपसी व्यवहार का संबंध है वहाँ किसी भावना की उपस्थिति भी काफी होती है।

'राष्ट्र' शब्द की विविध परिभाषाएँ

1. वांशिक ऐक्ययुक्त तथा एक ही भौगोलिक प्रदेश पर रहनेवाला मानव समूह अर्थात राष्ट्र। –प्रा.बर्जेस

2. जिन लोगों की संस्कृति एक है तथा जो लोग अपने वैचारिक तथा मानसिक जीवन और आचरण की एकता को प्रयत्नपूर्वक तथा दृढ़तापूर्वक कायम रखते हैं उन्हीं लोगों से राष्ट्र बनता है। – प्रा. गार्नर

3. जिन लोगों में कुछ विशेष प्रेमसंबंध निर्माण होने से वे आनंदपूर्वक एकत्रित रहते हैं तथा एक दूसरे से अलग करने पर जो लोग असंतुष्ट होते हैं, तथा जो लोग अपने से भिन्न लोगों की गुलामी में नही रह सकते ऐसे लोगों को राष्ट्र कहा जा सकता है। –रैम्वै मूर।

राष्ट्र की और भी परिभाषाएँ दी जाती हैं:

* राष्ट्र धर्म के समान ही मानसिक तथा सांस्कृतिक होता है। वह मन की विशिष्ट अवस्था है। वह एक आध्यात्मिक विरासत है। मन चाहता है इसलिए राष्ट्र बनता है।
* अन्य समूहों से अलगत्व की प्रतीति तथा आपस में एकात्मता की भावना रखनेवाला मानवी समूह अर्थात राष्ट्र।

आधुनिक संदर्भों में उक्त सभी परिभाषाएँ अपर्याप्त हैं। इनमें से रैम्वे मूर की परिभाषा अधिक स्पष्ट और उचित मानी जा सकती हैं क्योंकि इन परिभाषाओं के मूल में यह धारणा रही है कि विशिष्टि गुट के मानवी समूहों का भावनात्मक रूप से एकता की भावना को बढ़ाने की दृष्टि में भौगोलिक समानता, वांशिक समानता, भाषिक समानता,

ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक समानता आदि विविध बातें आवश्यक हैं और उनकी उपस्थिति तथा सांस्कृतिक समानता आदि विविध बातें आवश्यक हैं और उनकी उपस्थिति से अपने आप 'राष्ट्र' निर्माण होता है। परंतु यह सच नहीं है क्योंकि उक्त बातों में से कोई भी एक बात राष्ट्रवादी भावना की वृद्धि का आधार बन सकती है, अनिवार्य नहीं बन सकती। साथ ही ऐसे ही दो गुटों के हितसंबंध एक–दूसरे को चुनौती देते हुए भी दिखाई देते हैं।

✱ राष्ट्रवाद प्रथमतः और मूलतः मानसिक अवस्था है।

राष्ट्रवाद प्रथमतः और मूलतः मानसिक अवस्था है। राष्ट्रवाद एक ऐतिहासिक संकल्पना है। इस संकल्पना के संदर्भ में अनेक राज्यशास्त्रयों ने अपने मंतव्य दिए हैं। व्यक्ति का निजी और सामुदायिक जीवन राष्ट्रवाद की सजीवता पर ही निर्भर रहता है। ग्रासिया नामक राजनीतिज्ञ ने राष्ट्रवाद विषयक मौलिक चिंतन प्रकट किया है। राष्ट्रवाद देश के बारे में प्रेम–भावना का निर्माण करता है। राष्ट्रवाद अनेक भावनाओं का एकत्रित मिश्रण है। इन सभी भावनाओं में सर्वत्र प्रखरता का गुण विद्धमान है। जॉन एच.रैंडोल के मतानुसार 'राष्ट्रवाद यह एकमेव ऐसी संकल्पना है कि जिसके लिए आज भी असंख्य लोग आत्मसमर्पण के लिए तैयार रहते हैं।' 'राष्ट्र के मरने पर कौन जीवित रहेगा? राष्ट्र जीवित रहा तो मरेगा कौन?' जिस प्रकार किसी प्राणी के शरीर में अनगिनत कोशिकाएँ होती हैं उसी प्रकार राष्ट्र के जीवन में भी अनेक व्यक्तियों का जीवन घुला–मिला रहता है।

फ्रांस की राज्यक्रांति सिर्फ राज्यशासन बदलने के लिए नहीं हुई थी। उसका प्रमुख उद्देश्य था समाज की व्यवस्था को बदलना, समाज में परिवर्तन कराना। सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से की गई इस क्रांति ने संपूर्ण राज्यशासन को अस्त–व्यस्त बना दिया। इस क्रांति ने दुनिया को समता, बंधुत्व तथा स्वातंत्र्य की त्रिसूत्री दान में दे दी। इसका प्रमुख कारण यह था कि फ्रेंच लोग मानसिक दृष्टि से एक बने थे। राष्ट्रवाद की भावना ने उन्हें एकत्रित किया था। फ्रांस राज्यक्रांति की यह घटना राष्ट्रवाद के विकास का प्रमुख कारण मानी जाती है। यह घटना सिद्ध करती है कि राष्ट्रवाद एक मानसिक अवस्था है।

भारत जैसे राष्ट्र में विविध धर्म, जाति के लोग रहते हैं। उनकी बोलियाँ और रहन–सहन अलग होता है लेकिन फिर भी स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब कभी बाढ़, भूचाल, तूफान जैसे प्राकृतिक आपत्तियाँ आईं तब संकटग्रस्तों की मदद के लिए हमेशा सभी प्रकार के लोग आगे बढ़ते हैं, एक–दूसरे की मदद करते हैं, संकटग्रस्त लोगों के पुनर्वसन में सहयोग देते हैं। इस कार्य में कहीं भी जाति, धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं रहता। इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि बहुसंख्य भारतीयों के मन में जाति–धर्मातीत एक भारतीयत्व की भावना अर्थात राष्ट्रवादी भावना पनप रही है।

ऐसा भी कहा जाता है कि राष्ट्रवाद एक राजनीतिक तत्वज्ञान है। राष्ट्रवाद की राजनीति से जरूर संबंध है, परंतु उससे भी पहले उसका लोगों के ऐक्य से संबंध है। लोगों का ऐक्य मानसिक एकता के बिना संभव नहीं होता और यह मानसिक एकता राष्ट्रवाद की भावना से निर्मित होती है। इससे यह कहना गलत नहीं होगा कि राष्ट्रवाद एक मानसिक अवस्था होती है।

राष्ट्रवाद के गुण–दोष

राष्ट्रवाद की मौजूदगी से मनुष्य की शीघ्र गति से प्रगति हुई। परंतु साथ ही राष्ट्राभिमान तथा राष्ट्रवाद के कारण जागतिक युद्ध भी हुए और मनुष्य की बड़े पैमाने पर हानि हुई। हर चीज के दो पहलू होते हैं– अच्छे और बुरे। राष्ट्रवाद भी इसका अपवाद नहीं है। राष्ट्रवाद के संदर्भ में भी हमें कुछ गुण–दोष नजर आते हैं।

राष्ट्रवाद के गुणः

1. स्वराष्ट्र के बारे में आत्मीयता की भावना होने से राष्ट्रवाद की निर्मिति होती है। राष्ट्रवाद की भावना से ही राष्ट्रविषयक श्रद्धा जागृत की जाती है। 'यह मेरा राष्ट्र है और मुझे इस राष्ट्र के लिए कुछ करना चाहिए' जैसी भावना के निर्माण में मदद होती है। राष्ट्रवाद की भावना के कारण ही मनुष्य अन्य मनुष्यों को प्रेम करने के लिए प्रेरित होता है। साथ ही राष्ट्र के प्रति आदर और अधिकाधिक समर्पण की भावना का निर्माण होती है।

2. राष्ट्र का विकास व्यक्तिगत विकास की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि राष्ट्र के विकास में ही व्यक्ति का विकास निहित है। राष्ट्रवाद के कारण ही सामान्य लोगों में उक्त भावना का निर्माण होता है। राष्ट्रवाद बताता है कि राष्ट्र का सम्मान, राष्ट्र की प्रतिष्ठा तथा राष्ट्र का विकास आदि के सामने व्यक्तिगत प्रश्न अत्यंत गौण, नगण्य रहते हैं।

3. सभी क्षेत्रों में अपना राष्ट्र प्रगत हो, जैसी भावना राष्ट्रवाद से ही निर्मित होती है। राष्ट्रवाद के कारण ही राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति के लिए संपूर्ण समाज कटिबद्ध हो जाता है। संपूर्ण समाज के संकलित प्रयत्नों से ही राष्ट्र की सभी क्षेत्रों में प्रगति होती है।

4. यह कहना गलत नहीं होगा कि ऐक्य–निर्मिति राष्ट्रवाद का सबसे प्रमुख कार्य है, एक राष्ट्र के सदस्यों को एक–दूसरों के बारे में प्रेम, आदर, अपनत्व महसूस होता है। हम सब एक हैं, एक ही बडें परिवार के सदस्य हैं, जैसी भावना राष्ट्रवाद के कारण ही पनपती हैं। हर व्यक्ति महसूस करने लगता है कि राष्ट्र के हितसंबंध और स्वातंत्र्य की रक्षा करना उसका प्रमुख कर्तव्य है और वह इस कर्तव्यपूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। यह राष्ट्रवाद का प्रमुख गुण है।

5. प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। राष्ट्रवाद हर नागरिक को सूचित करता है कि इस संस्कृति की रक्षा, उसका पालन–पोषण, संवर्धन करना उसका कर्तव्य है। प्रत्येक नागरिक को अपनी संस्कृति पर उसकी विशेषताओं पर गर्व होता है। राष्ट्र की परंपराएँ तथा सांस्कृतिक रीति–रिवाज नितांत महत्त्वपूर्ण और अभिमानास्पद रहते हैं। इस भावना का निर्माण भी राष्ट्रवाद के कारण होता है।

<u>राष्ट्रवाद के दोषः</u>

1. राष्ट्रवाद का स्वरूप अगर आक्रामक रहे तो ऐसे राष्ट्रवाद से अन्य राष्ट्रों पर आक्रमण करने की प्रवृति बढ़ती है।

2. प्रखर राष्ट्रवाद तथा प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद जागतिक शांति और सुव्यवस्था की दृष्टि से चिंताजनक और घातक सिद्ध हो सकता है। दो विश्वयुद्धों का प्रमुख कारण प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद ही माना जाता है। जर्मनी, जापान जैसे आक्रामक राष्ट्रवादी राष्ट्रों की गतिविधियों से ही जागतिक शांति और सुव्यवस्था अनेक बार खतरे में आई है।

3. आक्रामक राष्ट्रवाद से साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही ऐसे राष्ट्रवाद से उपनिवेशवाद को भी बढ़ावा मिलता है। हमारे राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं का विस्तार होना चाहिए, राष्ट्र विस्तृत बनाना चाहिए, साथ ही हमारे राष्ट्र की ही जीत होनी चाहिए जैसी ईर्ष्या पनपती है और उसी ईर्ष्या से

साम्राज्यवाद का उदय होता है। इस ईर्ष्या के कारण तथा अपनी साम्राज्यतृष्णा तृप्त करने के लिए ऐसे आक्रामक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों का न केवल स्वातंत्र्य बल्कि अस्तित्व भी समाप्त करने के लिए उद्‌युक्त होते हैं। अमेरिकन साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद अन्यों पर वर्चस्व दिखाने की ईर्ष्या से निर्मित घातक राष्ट्रवाद है। विश्व में अपने वर्चस्व को स्थापित कराने के लिए अमेरिकन शासनकर्ताओं ने अनेक बार विश्व के तानाशाही, जुल्मी शासकों का समर्थन किया है। मदद करके बड़ा बनाया है। अमेरिकन साम्राज्यवादी राष्ट्रवाद वैश्विीकरण और उदारीकरण के माध्यम से तीसरे जगत की गरीब जनता का शोषण करने के लिए स्वीकृति देनेवाला तथा उसके आधार पर अपने देश की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित की रक्षा करनेवाला राष्ट्रवाद है। वह न्याय, समता आदि मूल्यों पर आधारित नहीं है।

4. प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद से वंशवाद की संकल्पना का पुनरूज्जीवन करने का प्रयास होता है। वंश के बल पर समाज में श्रेष्ठत्तव स्थापित करने की कल्पना कालबाह्य हुई है। इस राष्ट्रवाद के कारण वांशिक भेदाभेद की कल्पनाएँ प्रसारित की जाती हैं और इस वांशिक भेदभाव से श्रेष्ठ–कनिष्ठ की भावना बढ़ने लगती है।

5. प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद के कारण अंतर्राष्ट्रीयवाद का विकास संभव नहीं होता। यह राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयवाद की प्राथमिक भूमिका के विरोध में काम करता है। वह अंतर्राष्ट्रीय नीति–नियमों के विरूद्ध कार्य करता है।

6. राष्ट्रवाद का स्वरूप अतिरेकी बनने से असहिष्णु विचार तथा वृत्ति बढ़ने लगती है। 'केवल हम ही श्रेष्ठ हैं' का अहंकार बढ़ने लगता है और अन्यों के गुणों को ग्रहण करने की उदारता समाप्त हो जाती है। अतिरेकी राष्ट्रवाद पाशवी वृत्ति की तरफ झुकता है। इससे सेना और युद्ध सामग्री में बड़े पैमाने पर वृद्धि होती है। ऐसे राष्ट्र अपनी सेना–बल का प्रदर्शन करके उनकी जनता का अतिरेकी राष्ट्रवाद जागृत करते हैं। अंततः ऐसे राष्ट्र यृद्ध का अवलंब करते हैं। ऐसे युद्ध अन्य राष्ट्रों के अस्तित्व तथा अंतर्राष्ट्रीय शांतता और सहकार्य की दृष्टि से धोखादायक बनते हैं।

हाल ही में अफगानिस्तान के तालिबान शासन ने ऐसे ही तीव्र राष्ट्रवाद का समर्थन किया और उसके लिए आतंकवादियों की सेना निर्माण करके जागतिक शांति को धोखा देने का प्रयास किया। जिस अमेरिका ने अपने विशिष्ट हितसंबंधों की रक्षा के लिए तालिबान को पुष्ट किया, उसी अमेरिकी के सामने तालिबान ने बड़ी चुनौती पैदा की।

अर्थात तालिबान शासन सामान्य अफगान जनता पर विशेषतः स्त्रियों पर अमानुष अत्याचार और अन्याय करनेवाला होने से अफगान जनता ने कभी इस आक्रामक राष्ट्रवाद को स्वीकृत नहीं किया और यह बात तालिबान की पराजय के बाद स्पष्ट विदित हुई।

7. राष्ट्रवाद का अतिरेकी स्वरूप व्यक्ति का स्वातंत्र्य समाप्त करता है। तब व्यक्ति गौण हो जाते हैं। व्यक्ति समाज के लिए सर्वसंगपरित्याग करने के लिए मजबूर होता है। साथ ही अतिरेकी राष्ट्रवाद में समता, स्वातंत्र्य का विरोध किया जाता है, अतः राष्ट्रवाद का तत्व जनतंत्र विरोधी बन जाता है।

8. अतिरेकी राष्ट्रवाद 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' इस उक्ति के समान है। शक्तिशाली व्यक्ति या राष्ट्र अन्य राज्यों को अपना गुलाम बनाते हैं। दीन–दलितों के हितों की रक्षा के बजाय उन्हें ही तंग किया जाता है और इस प्रकार दीन–दलितों को तंग करना सुसंस्कृत समाज का लक्षण नहीं है।

राष्ट्रवाद का स्वरूप सर्वत्र समान नहीं रहता। उसकी प्रेरणाएँ अलग–अलग रहती हैं। जब भारत अंग्रेजों के आधिपत्य में था तब देश का 'स्वातंत्रय' भारतीय राष्ट्रवाद की प्ररेणा रहा। परंतु उस समय इंग्लैंड का राष्ट्रवाद अलग था। इंग्लैंड के राष्ट्रवाद के पीछे उनके खुद के सर्वांगीण विकास की प्रेरणा कार्यरत थी। एक देश में भिन्न स्वरूप के राष्ट्रवाद हो सकते हैं। स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारत में जो राष्ट्रवाद रहा उसका स्वरूप भिन्न है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारतीय समाज को संघटित

करना मुख्य उद्देश्य। अब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज में एकसमान विकास करना मुख्य उद्देश्य रहा है। विभिन्न देशों में प्राप्त राष्ट्रवाद के कई स्वरूप हैं जैसे –

1. **स्वातंत्र्य की प्रेरणा से निर्मित राष्ट्रवादः**

जो समाज पारतंत्र्य में होता है ऐसे समाज में स्वातंत्र्य की प्ररेणा से युक्त राष्ट्रवाद निर्माण होता है। उन पर परकीयों का जो वर्चस्व रहता है उसे उतार फेंकने के लिए समाज संघटित होता है और परकीयों के विरोध में संघर्ष करने लगता है। अर्थात यह संघर्ष कितने समय तक चलेगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। ऐसे समाज को नियंत्रित करनेवाले राज्यकर्ताओं की नियंत्रण–क्षमता कितनी है? इस शक्ति के विरोध में लड़नेवाले समाज का नीतिधैर्य कैसा है? ऐसे समाज में ऐक्य तथा हिम्मत कितनी है? इन और ऐसी बातों पर यह समय निश्चित होता है। स्वातंत्र्य की प्रेरणाभरा राष्ट्रवाद आफ्रीक तथा एशिया के अनेक देशों में निर्मित हुआ। स्वतंत्रता–प्राप्ति से पहले भारतीय समाज अंग्रेजों के खिलाफ संघटित हुआ था। उसके पीछे इसी राष्ट्रवाद की प्रेरणा रही।

2. **<u>उदारमतवादी राष्ट्रवादः</u>**

इस राष्ट्रवाद के संदर्भ में हम इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका आदि राष्ट्रों के राष्ट्रवाद का उल्लेख कर सकते हैं। जनतंत्र में व्यक्ति–स्वातंत्र्य महत्त्वपूर्ण रहता है, अतः जनतंत्र में उदारमतवाद का विकास होता है। जनतंत्र में लिखित तथा दृढ़ स्वरूप के संविधान में व्यक्ति के मूलभूत अधिकार ओर व्यक्तिस्वातंत्र्य का प्रावधान स्पष्ट रहता है। व्यक्ति को अपने स्वातंत्रता और सुविधाओं की रक्षा के लिए न्यायालय की सुविधा रहती है। संघटित लोकत से व्यक्ति के स्वातंत्र्य की रक्षा होती है। जनता चुनाव के माध्यम से सरकार को नियंत्रित करती है। ऐसे देश में राजनीतिक पक्ष लोकमत का समर्थन प्राप्त कराके सत्ता–संपादन करने की दृष्टि से विशेष प्रयत्नशील रहते हैं। अलग–अलग प्रसार माध्यमों से लोकमत का निर्माण किया जाता है। व्यक्ति को अपना मत प्रकट करने की स्वतंत्रता होती है। जनतंत्र में उदारमतवाद की पुष्टि कराने के लिए समाज संघटित होता है और ऐसे समाज की राष्ट्रवादी भावना से उदारमतवादी राष्ट्रवाद व्यक्त होता है।

इंग्लैंड के उदारमतवाद में हमें विसंगति दिखाई देती है। इंग्लैंड ने उदारमतवादी राष्ट्रवाद सिर्फ अपने तक सीमित रहा। परंतु विश्व में साम्राज्य निर्माण करके अनेक देशों को गुलाम बनाया। इंग्लैंड ने जिन अन्य देशों पर सत्ता हासिल की, उन देशों के बारे में तथा वहाँ की जनता के बारे में उदारमतवाद नहीं दर्शाया। बल्कि उनके आधिपत्य में स्थित देशों में राष्ट्रवाद न पनपने की दृष्टि से प्रयत्न किए। इसी प्रकार का अनुभव फ्रांस तथा जर्मनी के द्वारा अन्य देशों के बारे में अपनाई गई नीतियों के संदर्भ में रहा।

3. आक्रामक राष्ट्रवाद (अतिरेकी राष्ट्रवाद):

इटली के मुसोलिनी तथा जर्मनी के हिटलर के नेतृत्व में निर्मित राष्ट्रवाद को अतिरेकी अथवा आक्रामक राष्ट्रवाद कहा जाता है। इस राष्ट्रवाद में समाज को संघटित करते समय धर्म, वंश, भाषा, लिपि, संस्कृति, वर्ण आदि बातों को माध्यम के तौर पर अपनाया जाता है। ऐसे समाज में बहुधा अलग्त्व की भावना का विकास किया जाता है। इसमें इस तरह की भावनाओं को बढ़ावा दिया जाता है कि हम धर्म, वंश, भाषा, लिपि, संस्कृति, वर्ण आदि क्षेत्रों में हम अन्यों से अलग हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं। समाज को सचेत कराने की दृष्टि से गत वैभव के इतिहास को समाज के सामने रखा जाता है। इससे उनका परंपरा में विश्वास तथा उसका अभिमान बढ़ाया जाता है। साथ ही सेना और युद्ध–सामग्री में वृद्धि की जाती है। सैन्यशक्ति को समर्थ बनाने की दृष्टि से निर्मित शस्त्र विध्वंसक होते हैं। देश की वर्धिष्णु शक्ति पर जनता विश्वास करे, इस दृष्टि से सैन्य–शक्ति को प्रदर्शित किया जाता है। आक्रमण करने का तात्पर्य यह कि बलवानों के द्वारा दुर्बलों पर शासन चलाना जैसी प्रवृति का समर्थन किया जाता है। राष्ट्र को ईश्वरस्वरूप मानकर राष्ट्र के लिए सर्वस्व के त्याग की भावना वृद्धिगत की जाती है। आक्रामक राष्ट्रवाद युद्धजन्य प्रवृति को उत्तेजित करता है अपने देश में स्थित व्यक्ति–स्वातंत्रय को संकट में डालकर अन्य देशों के स्वातंत्र्य को हड़पता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व अतिरेकी राष्ट्रवाद के कारण ही जर्मनी तथा इटली आक्रामक बने। उनकी इस प्रवृति ने ही विश्व को दूसरे विश्वयुद्ध की खाई में ढकेल दिया। बड़े मैमाने पर जान तथा माल की हानि हुई। इस संकट में झुलसी हुई दुनिया ने आक्रामक राष्ट्रवाद का विरोध किया।

4. **अमेरिका का साम्राज्यवादी राष्ट्रवादः**

आज शीतयुद्ध के बाद विश्व में अमेरिकी एकमेव महासत्ता बची है। अमेरिका की सरकार और वहाँ की जनता खुद को विश्व का फौजदार मानकर, विश्व के कानून और सुव्यवस्था की पट्टेदार भी समझने लगी है। इसके पीछे उनका उदात्त हेतु न होकर अपने आर्थिक हितसंबंधों की रक्षा की तथा वर्चस्व की भावना रही है।

5. **समाजगुटों का राष्ट्रवादः**

देश के समाज में धर्म, वंश, भाषा, संस्कृति, वर्ग आदि अनेक कारणों से अलग–अलग गुट बनते हैं। संख्या की दृष्टि से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक जैसे गुटों का निर्माण होता है। धर्म, भाषा आदि के आधार पर अल्पसंख्यकों के मन में एकता की भावना बढ़ने लगती है और इससे राष्ट्र की निर्मिति होती है। देश का यह समाज 'राष्ट्र' स्वरूप ही होता है परंतु जरूरी नहीं कि वह अपने लिए अलग राज्य की मांग करे। इसलिए हमें एक ही राज्य में अनेक राष्ट्र दिखाई देते हैं।

6. **प्रागतिक राष्ट्रवाद :**

प्रागतिक राष्ट्रवाद व्यापक और उदात्त होता है। इसमें स्वार्थ, संकुचितता जैसी बातें नहीं होती। ऐसे राष्ट्रवाद से प्रेरित परतंत्र देश स्वतंत्रता के लिए झगड़ता है और स्वतंत्र देश स्वतंत्रता को बनाए रखने का प्रयत्न करता है। प्रागतिक राष्ट्रवाद में व्यक्तिस्वातंत्र्य की रक्षा होती है। नागरिकों को मूलभूत अधिकार मिलते हैं, उनकी रक्षा की जाती है। जनतंत्र का अवलंब करके समाज के संदर्भ में व्यक्ति–स्वातंत्र्य का विचार किया जाता है। समाजहित के लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ बंधन डाले जाते हैं।

सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर उपलब्ध होते हैं। कानून की दृष्टि में सभी समान रहते हैं। किसी भी कारण से व्यक्ति–व्यक्ति में फर्क नहीं किया जाता। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक समता बनाए रखा जाता है। देखा जाता है कि समाज में आर्थिक विषमता न बढ़े। किसी भी संघटन को विशेष अधिकार नहीं मिलते। अगर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में समाज का विभाजन हुआ तो एकात्मता नष्ट हो जाती है। यह बात राष्ट्रवाद के लिए हानिकारक है। प्रागतिक राष्ट्रवाद में विषमता, छोटे–बड़े, और ऊंच–नीच के लिए कोई स्थान नहीं होता है। यह बंधुत्व की सीख देता है, जिससे समाज में एकता बनी रहती है।

प्रागतिक राष्ट्रवाद ने वैज्ञानिक दृष्टि को भी स्वीकार किया है। समाज के लिए घातक प्रथाओं, रूढ़ियों, परंपराओं का त्याग करने की नीति अपनाई है। बुद्धिवाद से व्यक्ति तथा समाज का कल्याण होता है। कला, वाड्.मय, शास्त्र में प्रगति होती है और समाज विकसित होता है।

प्रागतिक राष्ट्रवाद में धर्मनिरपेक्षता का महत्व होता है और राज्य किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं करता। सभी धर्मों, नागरिकों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। धर्म के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव नहीं किया जाता। धर्मनिरपेक्षता तथा सर्वधर्मसम्भाव से सामाजिक ऐक्य बढ़ने लगता है। और राष्ट्रवाद के लिए लाभकर सिद्ध होता है। धर्म के नाम पर प्रचलित गलत रीतिरिवाज, परंपराएँ, रूढ़ियाँ समाजविघातक होती हैं। उनसे समाज की अवनति होती है। अतः प्रागतिक राष्ट्रवाद ऐसे विचारों का विरोध करता है। इस राष्ट्रवाद में शास्त्रीय वृत्ति का अवलंब होने से आय बढ़ती है, समाज की आर्थिक प्रगति होती है। लोगों का स्तर ऊपर उठता है।

प्रागतिक राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयवाद के विरोध में नहीं है, बल्कि उससे दृष्टि व्यापक तथा विस्तृत बनती है। यह राष्ट्रवाद जागतिक शांति और सहयोग को महत्व देता है। सहयोग की भावना से संपूर्ण मानवजाति के कल्याण की उम्मीद करता है। यह चाहता है कि राष्ट्रों के आपसी संघर्षों को एकसमान तरीके से सुलझाए जाएँ।

3. राज्य और राष्ट्र

राज्य तथा राष्ट्र में निम्न मूलभूत अंतर हैं –

1. राज्य भौतिक, राजनीतिक संघटना है और राष्ट्र एक मनोभावना है। राष्ट्रीयता ऐक्य की भावना है।

2. भूमि, लोग, सरकार तथा सार्वभौमत्व आदि राज्य की चार आवश्यक बातें हैं तो भाषा, वंश, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि राष्ट्रवाद की अन्य बातें हैं।

3. राज्य के लिए सार्वभौमत्व और सरकार की जरूरत पड़ती है, जबकि राष्ट्र के लिए सार्वभौमत्व और सरकार अनिवार्य नहीं है। परतंत्रता में भी राष्ट्रीयत्व की भावना प्रबल रह सकती है।

4. राज्य के पास दंडशक्ति होती है जो कि राष्ट्र के पास नहीं होती।

5. राज्य का निश्चित भूप्रदेश होता है लेकिन राष्ट्र का विस्तार राज्य के बाहर भी हो सकता है।

6. 'राष्ट्र' भावना का अभाव होने पर भी राज्य का निर्माण हो सकता है। लेकिन राष्ट्र के लिए राष्ट्रीयत्व की भावना आवश्यक है।

राष्ट्रीय स्वयंनिर्णय का तत्व

(एक राष्ट्र, एक राज्य की संकल्पना)

समान वंश, समान भाषा, समान राजनीतिक आकांक्षा अथवा समान हितसंबंध आदि में से किसी भी घटक के कारण किसी लोकसमुदाय में राष्ट्रीयता की भावना का उदय होने पर उन्हें स्वतंत्रता दिलाकर उनकी स्वतंत्र राज्य–स्थापना की माँग को पूरा करना ही स्वयंनिर्णय का तत्व कहलाता है। राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण जिस लोकसमुदाय में हुआ है उसे स्वतंत्र राज्य स्थापन करने का अधिकार देने को ही स्वयंनिर्णय का अधिकार कहा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र एक स्वतंत्र राज्य होना ही 'एक राज्य–एक राष्ट्र' कहलाता है।

19 वीं सदी के उत्तरार्ध में 'एक राष्ट्र – एक राज्य' तत्व को गति मिली। 19वीं सदी में विश्वभर में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद बढ़ गया था। छोटे–छोटे राज्य शक्तिशाली राष्ट्रों के अधिपत्य में थे। उन छोटे राज्यों के लोगों के मन में राष्ट्रीयत्व की भावना का निर्माण हुआ इसलिए वे स्वतंत्रता की माँग करने लगे। उनके मन में स्वतंत्र राष्ट्र–राज्य स्थापना की इच्छा बढ़ी। 19 वीं सदी में जर्मनी, इंग्लैंड, ऑस्ट्रिया, हंगेरी, तुर्कस्थान आदि बड़े–बड़े साम्राज्य यूरोप में थे। इन साम्राज्यों के अधिपत्य में अनेक छोटे राज्य गुलामी में फँसे थे। तब स्वाभाविक रूप से ऐसे राज्यों को महसूस होने लगा कि उनका अपना स्वतंत्र 'राष्ट्र–राज्य' हो।

स्वयंनिर्णय के अर्थात एक राष्ट्र–एक राज्य के तत्व में सबसे बड़ा धोखा यही है कि यदि इससे दुनिया में छोटे–छोटे राष्ट्रराज्यों का निमार्ण हुआ तो उनमें आपस में इतना तनाव, संघर्ष निर्माण होगा, जिससे महायुद्ध का निर्माण होने की संभावना बढ़ेगी। साथ ही जो राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से दुर्बल तथा सामर्थ्यहीन होंगे उनके लिए स्वयंनिणर्य का तत्व लागू करना अहितकारी होगा, क्योंकि ऐसे राष्ट्र परावलंबी बनेंगे। बड़े सामर्थ्यशाली राष्ट्र ऐसे राज्यों का शोषण करेंगे। आज तीसरे जगत के पिछड़े, अविकसित राष्ट्रों की जो स्थिति है उसे देखते हुए कहना पड़ता है कि स्वयंनिर्णय के तत्व को स्वीकारने से पहले बहुत कुद सोचने की जरूरत है। जो राज्य आर्थक दृष्टि से स्वावलंबी, स्वयंपूर्ण हैं और जो अपनी सुरक्षा की दृष्टि से समर्थ हैं ऐसे राज्यों को ही स्वयंनिर्णय के तत्व को

लागू करना हितकर साबित होता है। भारत जैसे बहुभाषी, बहुधर्मी तथा बहुजातीय राज्य को स्वयंनिर्णय के तत्व से दूर रहना ही बेहतर है।

4. राष्ट्रवाद के पूरक घटक

वांशिक एकता–

जब एक ही वंश के लोग विशिष्ट भूप्रदेश में रहने लगते हैं तब उनमें सहज रूप में भावनात्मक एकता का निर्माण होता है। अनेक राज्यशास्त्रों की दृष्टि में राष्ट्रीय भावना की वृद्धि में 'वंश' महत्त्वपूर्ण भमिका निभाता है। हिटलर ने इसका सफल नमूना पेश किया है। हिटलर ने आर्य वंश के लोगों के अहम् को प्रोत्साहित करके उनमें अन्य लोगों से पृथकत्व की भावना अंकित कर दी और उससे अत्यंत घातक, आक्रमक राष्ट्रवाद उदित हुआ। इससे सिद्ध होता है कि समान वंश महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिटलर ने इसका सफल नमूना पेश किया है। हिटलर ने आर्य वंश के लोगों के अहम् को प्रोत्साहित करके उनमें अन्यों से पृथकत्व की भावना अंकित कर दी और उससे अत्यंत घातक, आक्रमक राष्ट्रवाद उदित हुआ। इससे सिद्ध होता है कि समान वंश के लोकसमूहों में राष्ट्रवादी भावना अंकुरित हो सकती है। लेकिन दुनिया में ऐसे अनेक राष्ट्र हैं, जहाँ विभिन्न वंशों के लोग एक साथ रहते हुए भी वे देश राष्ट्र के रूप में अखंड खड़े हैं।

इंग्लैंड में अलग–अलग पूर्वजों के लोग रहने पर भी वह एक समर्थ राष्ट्र बना है और उसने अनेक वर्षों तक दुनिया पर शासन चलाया है। अमेरिका में अंग्रेज, जर्मन, झेक, पोल आदि अनेक वंशों के लोग एकत्रित हैं फिर भी आज अमेरिका राष्ट्र के रूप में सफल देश हैं।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टि से भी वांशिक एकता का विशेष महत्त्व नहीं रहा है। क्योंकि आज दुनिया में कोई भी वंश उस अर्थ में शुद्ध नहीं रहा है। वर्णसंकर से अनेक वंशों के मिश्रित लोकसमूहों ने स्थान प्राप्त किया है। भारतीय समाज भी आर्य तथा द्रविडों के मिश्रण से ही अस्तित्व में आया है। अतः राष्ट्रवादी भावना को अंकित करने के लिए यदि वांशिक एकता महत्वपूर्ण है लेकिन फिर भी आज राष्ट्रनिर्मिति की दृष्टि से वह अनिवार्य घटक नहीं रहा है।

धार्मिक एकता–

राष्ट्रवाद के पूरक घटकों में धर्म का विशेष स्थान है। समान धर्म के कारण समान उपासना पद्धति को अपनाने वाले तथा कुछ मात्रा में समान सांस्कृतिक

धरोहर रखनेवाले लोग संघटित होते हैं और राष्ट्रवाद बढ़ने लगता है। लेकिन आधुनिक युग के इतिहास को देखने पर यह कहना कठिन होता है कि धर्म के कारण देश एकत्रित होते हैं और रहते हैं। यूरोप में ईसाई धर्म का समान सूत्र रहने पर भी वहाँ फ्रांस, जर्मनी जैसे राष्ट्र दिखाई देते हैं। इन राष्ट्रों का केवल निमार्ण नहीं हुआ है बल्कि स्पष्ट दिखता है कि उन्होंने आपस में कड़ा संघर्ष भी किया है। मध्यपूर्व के अनेक मुस्लिम राष्ट्र और उनके आपसी युद्ध तो अभी–अभी का इतिहास है। इराक–इरान युद्ध, इराक–कुवेत युद्ध उसीके उदाहरण हैं। हिंदुस्तान के स्वतंत्रता आंदोलन में बाधा डालकर बै. जीना ने द्विवराष्ट्रवाद के सिद्धांत के आधार पर पाकिस्तान जैसे स्वतंत्र इस्लामी राष्ट्र को हासिल किया। लेकिन इस्लामी धर्म का समान सूत्र इस राष्ट्र को चौथाई शतक भी एकत्रित नहीं रख सका। पश्चिम पाकिस्तान के राज्यकर्ताओं द्वारा पूर्व पाकिस्तान की जनता पर हुए अत्याचार, आर्थिक शोषण जैसी बातें इस्लामी देश पाकिस्तान के दो टुकड़े होने में महत्त्वपूर्ण घटक रहीं। लेकिन उसी समय भारत में अनेकधर्मीय लोकसमूह रहने पर भी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद सफल होता हुआ दिखाई देता है।

उसी की वजह से आज विज्ञान युग में दुनिया के अनेक देशों में धर्म, लोगों की वैयक्तिक उपासना पद्धति तक मर्यादित दिखाई देता है तथा 'सर्वधर्मसमभाव', 'धर्मरिपेक्षता' जैसे मूल्यों को महत्त्व मिला है। राष्ट्र में एक ही धर्म के लोग हों ऐसा आग्रह अब नहीं रहा और उसके साथ–साथ ही राष्ट्र के अधिकृत धर्म की संकल्पना को भी अनेक देशों ने नकारा है।

राष्ट्रवादी भावना की निर्मिति में यदि वंश तथा धर्म का अधिक महत्व नहीं रहा है फिर भी देखने में आता है कि जिन देशों में अनेक वंश तथा धर्म के लोकससमूह रहते हैं वहाँ राष्ट्रवादी भावना के निर्माण में काफी बाधाएँ आती हैं। लोगों की अपनी धर्मपरक तथा वंशपरक निष्ठाओं को राष्ट्रवाद की तरफ झुकाने में काफी समय लगता है, उनके लिए सुदीर्घ प्रबोधन अभियान की आवश्यकता है जहां यह प्रक्रिया जितनी जल्दी हुई है वहां राष्ट्र जल्दी समर्थ बने हैं।

संस्कृति–

राष्ट्रवादी भावना को अंकित करने में समान संस्कृति का अंग भी सहायक हो सकता है। सांस्कृतिक विरासत में भाषा, लिपि, वाड़.मय, खान–पान से लेकर पहनावे तक की रीतियाँ, धर्म–कल्पना, नीति या मूल्यकल्पना आदि अनेक बातों का समावेश रहता है। इस प्रकार जब समान जीवन–पद्धति के लोग एकत्रित

रहते हैं, संघटित रूप में विविध सार्वजनिक सांस्कृतिक उपक्रम निभाते हैं तब उनमें अपने–आप ही एकता की भावना बढ़ने लगती है। लेकिन वांशिक एकता के समान ही सांस्कृतिक एकता की बात राष्ट्रवाद के लिए एकमेव अनिवार्य नहीं है। आज यातायात के साधन पर्याप्त हैं अतः विश्व संकुचित हुआ है। विविध धर्मों, देशों यहां तक कि विविध महाद्वीपों के लोगों में पारस्परिक व्यवहार में वृद्धि हुई है। परिणामतः लोगों की खान–पान, पहनावे की आदतें बदली हैं और उनमें समानता आई है। संगीत, नृत्य तथा नाटक भी सहज रूप में इस देश से उस देश में प्रसारित होते हुए दिखाई देते हैं। भारत जैसे देश में भी आम आदमी पंडित भीमसेन जोशी की बुलंद आवाज में गाए गए शास्त्रीय संगीत के साथ जाकिर हुसेन की तबलानवाजी को भी काफी पसंद करता है फिर सुननेवाला चाहे हिंदू, मुस्लिम या ईसाई ही क्यों न हो। हम भारत के किसी भी प्रदेश में जाते हैं तब पंजाबी व्यजनों के साथ–साथ इडली–सांबर, और रसगुल्ला से लेकर पुरणपाली तक सभी खाद्य पदार्थ किसी भी अच्छे होटल में आसानी से उपलब्ध होते हैं और बड़ी ही रुचि से खाए जाते हैं। इससे विविध शहरों के लोगों की अपनी एक अलग संस्कृति विकसित होती हुई दिखाई देती है। वैश्वीकरण के प्रभाव से योरोपीअन अथवा अमेरिकन संस्कृति का विकसनशील देशों में गलत प्रसार होता है। यहाँ नकारात्मक रूप में संस्कृति का एकीकरण हो रहा है। तभी तो सांस्कृतिक ऐक्व राष्ट्रवाद के लिए उपकारक तत्व तो है लेकिन महत्त्वपूर्ण तत्त्व नहीं रहा।

भाषिक समानता–

समान भाषा बोलनेवाले लोग एकता की भावना से एकत्रित रह सकते हैं। राष्ट्रवादी भावना की वृद्धि में भाषा और लिपि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भाषा के माध्यम से लोग विचारों का आदान–प्रदान करते हैं, एक–दूसरे को अपने सुख–दुःख बताते हैं। विचार तथा भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए भाषा उपयुक्त माध्यम हैं। 'अन्यों से हम अलग हैं' यह राष्ट्रवादी भावना का मर्म है और वह समान भाषा, लिपि तथा प्रखर राष्ट्रवादी वाड़मय के माध्यम से स्वाभाविक रूप में प्रसारित और अंकुरित हो सकता है। कुछ लोग समान भाषा को राष्ट्र का प्रमुख लक्षण मानते हैं। फिर भी राष्ट्रवादी भावना को बढ़ानेवाले एकमेव घटक के रूप में भाषा को महत्त्व नहीं दिया जा सकता। अनेक भिन्न भाषिक लोकसमूह एक ही राष्ट्र में बड़े प्रेमभाव से रहते हुए नजर आते हैं। स्विटरजरलैंड में फ्रेंच, जर्मन और इटालियन आदि तीन–तीन भाषाएँ बोली जाने पर भी वहाँ राष्ट्रीयता की प्रबल भावनाएं हैं। बेल्जियम, कैनडा आदि देशों में भी विविध भाषाएँ बोलने वाले लोग हैं परंतु साथ ही अमेरिका,

ऑस्ट्रेलिया, इंग्लैंड आदि देशों में अंग्रेजी ही प्रयुक्त होती है फिर भी वे अलग–अलग राष्ट्र हैं। इसलिए कहा नहीं जा सकता कि भाषिक एकता के बिना राष्ट्र निर्माण नहीं हो सकेगा।

एक ही भाषा के होते हुए भी महाराष्ट्र जैसे राज्य में विकास के असंतुलन के नाम पर बीच–बीच में अलग विदर्भ की माँग उठती रहती है। अर्थात यहां भाषा की अपेक्षा विकास के अवसर की बात महत्त्वपूर्ण रहती है।

भारत जैसे देश में भाषिक अलगत्व के मुद्दे पर स्वतंत्र राज्यों की निर्मिति हुई है। अधिकतर लोग प्रशासनिक कारोबार को लोकभाषा में होते हुए देखकर संतुष्ट दिखाई देते हैं। लेकिन इसी भाषा के मुद्दे पर मराठी–कन्नड, कन्नड़–तमिल जैसे भाषिक और उसी अर्थ में प्रांतीय आंदोलन होते हुए नजर आते हैं। अर्थात भाषा का घटक राष्ट्रवाद के लिए सहायक भी हो सकता है और बाधा थी।

भौगोलिक समता–

जब लोग एक अखंड भूप्रदेश में अनेक वर्ष तक एकत्रित रहते है तो वो सभी आर्थिक, सांस्कृतिक व्यवहार एकत्रित रूप में करते है जिससे उनमें अपने–आप ही एकात्मता भी भावना बढ़ने की संभावना रहती है। मतलब भौगोलिक समानता, राष्ट्रवाद का उपकारक तत्व साबित होता है। लोगों के मन में अपनी जन्मभूमि के बारे में हमेशा ही एक प्रकार की आत्मीयता रहती है। भारतीय लोग भारतीय भूखंड को भारतमाता मानकर उसकी पूजा करते हैं। अर्थर्वदेव में राज्य के भूप्रदेश को माता तो ऋग्वेद में उसे ही राष्ट्र के नाम से संबोधित किया जाता है। तभी तो प्राचीन काल से ही लोगों के मन में जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा, प्रेम, आदर तथा गर्व की भावना है। इसलिए भूप्रदेश की अखंडता के कारण राष्ट्रनिर्मिति और राष्ट्रसंवर्धन आसान हो सकता है। उसके लिए अमेरिका, एश्या, चीन, भारत जैसे देशों के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। पाकिस्तान के स्वतंत्र होने पर एक दूसरे से भौगोलिक रूप से दूर पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान अधिक देर तक एकत्रित नहीं रह पाए। लेकिन इसके विपरीत भी कई उदाहरण भी मिलते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इंग्लैंड राष्ट्र, इग्लैंड, आलैंड, स्कॉटलेंड तथा वेल्स आदि द्वीपों से बना एक समर्थ राष्ट्र है। विश्व भर के ज्यू लोगों के मन में पहले इस्रायल राष्ट्र को बनाने की इच्छा पनपी तभी बाद में 1948 में उन्हें अपना भूप्रदेश प्राप्त हुआ। लेकिन माना जाता है कि ज्यू, राष्ट्र के रूप में उससे पहले ही अस्तित्व में था। साथ ही भौगालिक अखंडता होने पर भी यूरोप में अनेक राष्ट्रों का निर्माण हुआ है। भौगोलिक अखंडता के

बावजूद भारत और पाकिस्तान स्वतंत्र राष्ट्र बने हैं और भौगोलिक स्वामित्व के लिए एक–दूसरे के शत्रुराष्ट्र के रूप में व्यवहार करते नजर आते हैं। ऐसे स्थानों पर भौगोलिक समानता की अपेक्षा भी अन्य बातें महत्त्वपूर्ण और अन्य निष्ठाएँ प्रभावी दिखाई देती हैं।

अर्थात भौगोलिक अखंडता का घटक भी राष्ट्रीयत्व की भावना निर्माण करने में सहायक भी और बाधक भी साबित होता है।

राष्ट्रवाद के निरे सहायक घटक

1. **एक शासन–** राष्ट्र के रूप में मान्यताप्राप्त भूप्रदेश पर एक ही शासन का प्रशासनिक नियंत्रण रहने से ऐक्य–भावना शीघ्र बढ़ती है। समान विषय, समान कानून के कारण 'हम सब एक हैं' की भावना बढ़ती है। शासन अगर कल्याणकारी भूमिका अपनाकर अपनी जिम्मेदारी निभा रहा हो, वह लोगों के हितों की रक्षा करने वाला हो और लोगों को सार्वजनिक सुविधाएं उपलब्ध करानेवाला शासन हो तो इस रूप में लोगों में सरकार के प्रति सम्मान की भावना बढ़ती है। लोगों के संघटित होने की प्रक्रिया गतिशील होती है। इसके विपरीत अगर शासन लोकहितैषी नहीं रहा, आम लोगों में आस्था नहीं रखता हो, अन्याय कर रहा हो तो लोग अन्याय के विरूद्ध उत्तेजित होकर संघर्ष पर उतरते हैं। दोनों ही प्रकारों में लोगों के संघटित होने की क्रिया घटित होती है और यह भावना राष्ट्रवाद की पूरक रहती है। परकीयों का शासन होने से राष्ट्रवादी भावना प्रज्ज्वलित होने में मदद मिलती है। परंतु राष्ट्रवादी भावना के द्वारा एकत्र हुए समाज पर एक ही शासन को होना नितांत जरूरी है।

भारत में ब्रिटिश–शासन से पहले भारतीय उपखंडों का समाज अलग–अलग राजाओं के अधिपत्य में था, अनेक टुकड़ों में विभाजित था जिनमें प्रत्येक के नियम, कानून अलग थे, प्रशासन की पद्धतियां अलग थीं। परिणामतः भारत के किसी एक हिस्से पर परकीयों का आक्रमण होने पर भी अन्य हिस्सों के लोग उसमें दखल नहीं देते थे। ऐसी स्थिति में विदेशी सत्ताओं को भारत पर राज्य करना आसान होता था। जब भारत पर अंग्रेजों का एकतंत्र राज्य शुरू हुआ तब उनहोंने आधुनिक प्रशासन प्रणाली को अपनाया। सभी क्षेत्रों में एकसूत्रता लाने

का प्रयत्न किया और यातायात की सुविधाएं बढ़ाईं। अतः सभी लोकव्यवहारों में गतिशीलता का निर्माण हुआ और 'भारत हम सब का एक राष्ट्र है' जैसी भावना बढ़ने लगी। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने जो जाति और धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद की भूमिका अपनाई उसके लिए यह घटना फायदेमंद रही। जिसके कारण भारतीयों को अंग्रेजों के खिलाफ संघटित करना भी आसान हो गया।

2. **राष्ट्रीय शिक्षा**– राष्ट्रीयत्व की भावना का निर्माण करने में शिक्षा का भी महत्त्व है। राष्ट्रीय शिक्षा से समाज का बौद्धिक स्तर बढ़ता है, विश्लेषण–वृत्ति का विकास होता है। यदि अपने राष्ट्र को एकात्म समाज के रूप में विकसित करना हो तो सभी नागरिकों को अपने कर्तव्य तथा अधिकरों का भान होना जरूरी है, जो कि शिक्षा से मिलता है। राष्ट्रीय शिक्षा से यह महसूस कराया जा सकता है कि अपने राष्ट्र के विकास के लिए एक जिम्मेदार नागरिक की हैसियत से प्रत्येक के पास त्याग की भावना होनी चाहिए। अर्थात् इस शिक्षा के जरिए कुछ विपरीत मत या संकुचित विचारों के लोग राष्ट्रवाद की अपेक्षा अन्य निष्ठा या अस्मिताओं को जगाने में प्रयत्नशील दिखते हैं। फिलहाल भारत के केंद्र में सत्ता में होनेवाली भा.ज.पा की सरकार इसी प्रकार से शिक्षा का भगवीकरण करके समाज में मुस्लिम द्वेष फैला रही है। दूसरी तरफ पाकिस्तान में मदरसों के द्वारा प्रशिक्षित जेहादी इस्लामी अतिरेकी संपूर्ण भारत में विशेषतः कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियां कर रहे हैं। दोनों प्रकार के धर्माधों ने शिक्षा–प्रणाली में प्रवेश करके जातिधर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद के समान चुनौती निर्माण की है। इसलिए हम सामान्य लोगों को सचेत रहकर शिक्षा के क्षेत्र से इन संकुचित विचारों को हटाना चाहिए तथा यह भी देखना होगा कि आने वाली पीढ़ी को किस तरह से राष्ट्रीयता की भावना बचपन से ही दी जा सके।

3. **राजनीतिक महत्वकांक्षा–** यदि लोगों के मन में 'हम सब एक हैं, 'हमारा एक राष्ट्र होना चाहिए, वह स्वतंत्र और सार्वभौम होना चाहिए' इस प्रकार की समान राजनीतिक आकांक्षा पैदा हों तो राष्ट्र अपने–आप ही तैयार होता है। राष्ट्रवाद की भावना बढ़ाने में धर्म, वंश, भाषा, संस्कृति की अपेक्षा समान राजनीतिक महत्वकांक्षा का अंश काफी मदद करता है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजों को हराकर अपने आम लोगों के मन में अपने सार्वभौम राष्ट्र निर्माण की भावना को उत्पन्न करने में म. गांधी सफल हुए और उस समय हमारा समाज अपने आप 'राष्ट्रस्वरूप' बन गया। इटली में मैझिनी के विचारों ने और भारत में लोकमान्य तिलक के विचारों ने इस भावना को बढ़ाने में मदद की। भाषिक, वांशिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि किसी भी प्रकार की भिन्नता होने पर भी जब

समाज राजनीतिक दृष्टि से सजग होकर समान राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होता है तभी राष्ट्रवाद बढ़ने लगता है।

4. **आर्थिक समानता–** राष्ट्रवाद के लिए पोषक तथा पूरक अनेक घटकों को देखा गया परंतु एक ऐसा घटक है जिसकी अनुपस्थिति में राष्ट्र एकात्म हो ही नहीं सकता, राष्ट्रवाद सफल नहीं हो सकता और वह महत्वपूर्ण घटक है आर्थिक समता। आर्थिक समाता का आश्वासन दिए बिना राष्ट्र के स्वतंत्रता आंदोलन में अथवा राष्ट्र की सुरक्षा में या राष्ट्र की निर्मिति में सर्वसामान्य लोगों का सहयोग मिलना केवल असंभव होता है और सर्वसामान्य जनता के सहयोग बिना किसी भी प्रकार का राष्ट्रवाद सफल नहीं हो सकता। दुनिया का उदाहरण देखें तो समाज में आदिवासी, दलित, नीग्रो, भूमिहीन और महिलाओं पर सदैव अन्याय हुआ है। उनका आर्थिक शोषण हुआ है। जब तक राष्ट्र निमार्ण के साथ इन समाजिक घटकों को भी उनके उत्कर्ष के समान या विशेष अवसर प्रदान नहीं किया जाता तब तक ऐसे समूह, राष्ट्र के विकास में हार्दिक सहयोग नहीं देंगे और राष्ट्रीय एकात्मता पनप नहीं पाएगी। इसलिए आर्थिक समता का घटक राष्ट्रवादी भाव विकसित कराने में नींव का पत्थर है।

5. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उदित जाति–धर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद

डेढ़ सौ वर्ष अंग्रेजों की गुलामी में रहने के बाद सन 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने के लिए सन् 1885 से कांग्रेस के नेतृत्व में एक बड़ा सर्वव्यापक संग्राम संघटित किया गया। अर्थात कांग्रेस की विचारधारा के अतिरिक्त अन्य कुछ संघठनों, गुटों, क्रांतिकारियों आदि ने भी स्वतंत्रता संग्राम के लिए अपनी ओर से प्रयत्न किए। कांग्रेस की स्थापना से पूर्व सन् 1857 में स्वतंत्रता संग्राम हुआ परंतु पर्याप्त नियोजन के अभाव में उसे अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई। इससे भी महत्व की बात यह कि इस संग्राम का नेतृत्व उन लोगों ने किया जो कि पहले तो अंग्रेजों के साथ काम करते थे लेकिन अब अंग्रेजों ने उन्हें बर्खास्त कर दिया था। इस प्रकार सामान्य जनता कई कारणों से इससे दूर रही। प्रश्न था कि स्वतंत्रता के बाद प्राप्त स्वराज्य में समाज के विविध घटकों का स्थान क्या होगा? विशेषतः अंग्रेज आने से पहले भारत में छोटे–बड़े राजाओं का आधिपत्य था, उनके माध्यम से राजशाही का बोलबाला था। इस पृष्ठभमि पर स्वतंत्रता मिलने के बाद यहां किस प्रकार की व्यवस्था रहेगी? या फिर से साम्राज्यशाही युग वितरित होगा? आदि प्रश्न सुलझाए नहीं गए। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में शरीक सैनिक तथा नेताओं के समर्पण के प्रति कृतज्ञता भाव रखने पर भी कहा जा सकता है कि वे अपने संग्राम को सर्वव्यापक नहीं बना पाए। विविध समाजघटकों को, उनकी आकांक्षाओं को संग्राम से जोड़ नहीं पाए।

1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद पहली बार प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार तथा अवसर को मान्यता देने वाले आधुनिक विचारों की, अर्थात स्वतंत्रता, समता, न्याय आदि मूल्यों की घोषणा की गई। तिलकजी के आगमन तक कांग्रेस का आंदोलन न्याय मार्ग पर विश्वास रखता था, उसी मार्ग पर कार्यरत था। परंतु तिलकजी के आगमन पर यह आंदोलन, उग्रमार्गी बना और अंग्रेजों के खिलाफ भारतीयों को आक्रामक रूप में संघटित करने लगा। फिर भी कांग्रेस का आंदोलन उस अर्थ में राष्ट्रव्यापी या सभी लोगों को साथ लेनेवाला नहीं बना था।

तिलक जी के निधन पर स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व गांधीजी के पास आ गया। तथा आगे चलकर विश्व के इतिहास में अफ्रो–एशियाई देशों के स्वतंत्रता संग्रामों को प्रेरणा देने वाले स्वतंत्रता आंदोलनों को गांधी जी ने संगठित किया। यहाँ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सभी विशेषताओं का अनुशीलन करना संभव नहीं है। परंतु इस आंदोलन ने पहली बार इस देश के दलित, आदिवासी, महिला आदि सभी कमजोर वर्ग के सामाजिक घटकों को विकास के समान अवसर दिलाने की हामी भरी। इस आंदोलन ने स्पष्ट किया कि भविष्य के स्वतंत्र भारत में राजाओं, महाराजाओं, संस्थानिकों अथवा पूंजिवादियों जैसे महाजनों का, जातिवादियों का या परंपरागत सत्ताधीशों का शासन नहीं होगा बल्कि भारत में जनतांत्रिक समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद और वैज्ञानिक आदि मूल्यों में विश्वास रखनेवाला जातिधर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण, समताधिष्ठित, समर्थ भारत राष्ट्र निर्मिति में प्रयत्नशील शासन होगा। यह बात लोकसमूहों तक पहुंचाई गई तभी तो भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में गांव–गांव सामान्य जनता जिद के साथ शरीक हुई, अनेक लोगों ने अपने प्राण न्योछावर किए, अनेकों ने अपने घरबार को छोड़ दिया। लोगों ने गांधीजी के आदेश पर विश्वास करके अपना सर्वस्व समर्पण किया। ऐसा इसलिए भी हो सकता है कि उन्हें स्वतंत्रता–आंदोलन के उद्देश्यों में अपने–अपने वर्ग के लोगों के उत्थान के स्वप्न नजर आए और उन्हें वो मर्मस्पर्शी भी लगे।

28म. गांधीजी ने हिंदू–मुस्लिम ऐक्य का स्पप्न देखा। स्वतंत्रता आंदोलन ने बार–बार पुनर्घोषित किया कि यहाँ हिंदू–मुसलमानों के साथ बौद्ध, क्रिश्चन जैसे सभी धर्मों के लोग, विविध उपासना पद्धतियों को मानने वाले जनसमूह रहेंगे, उन्हें उनका व्यक्तिगत उपासना स्वातंत्र्य भोगने का अधिकार मिलेगा, अपने विकास का अवसर मिलेगा। तभी तो खान अब्दुल गफार खान, मौलाना अबुल कलाम आजाद से लेकर शहीद शौकतअली युसुफ जी तक सभी ने इस आंदोलन में अपना सहयोग दिया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इस धुरिणों ने स्वतंत्र भारत का यह जो स्वप्न देखा उसी का उद्घोष अत्यंत सामर्थ्य के साथ डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने भारतीय संविधान में किया। भारत का सार्वभौम प्रजासत्ताक किसी भी धर्म, जाति, वंश, पंथ अथवा लिंग के आधार पर व्यक्ति–व्यक्तियों में अंतर नहीं

करेगा। हर व्यक्ति समान है और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता, सामर्थ्य के अनुसार अपना जीवन विकसित करने का पूरा अवसर मिलेगा। संविधान ने इसे स्पष्ट रूप से आधोरेखित किया है। संविधान में अचानक यह विचार नहीं आया। स्वतंत्रता आंदोलन के समय ही आंदोलन को संघटित करते वक्त, लोगों को सत्याग्रह के लिए पुकारते वक्त इन्हीं तत्त्वों को बारबार उच्चारित किया गया था। अतः सभी जनसमूहों का प्रतिनिधित्व करनेवाले लाखों लोग भारतीय स्वातंत्र्य–संग्राम में शरीक हुए। इस आंदोलन के दौरान ही यह जातिधर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद का विचार विकसित हुआ है।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय भारत में विकसित राष्ट्रवाद की और एक विशेषता है। इन आंदोलन के दौरान भारतीय कांग्रेस के नेता अफ्रीका, एशिया महाद्वीपों के अन्य औपनिवेशिक देशों के साथ संपर्क में थे। उनके स्वतंत्रता के अधिकार को मान्य करते हुए उन्हें भी संघटित होने की प्रेरणा दे रहे थे। जिनके खिलाफ लड़ना था, उस अंग्रेज देश के संदर्भ में बार–बार स्पष्ट किया जाता रहा कि राज्य करने वाला जुल्मी शासन अलग है और ब्रिटिश जनता अलग है और ब्रिटिश जनता हमारी शत्रु नहीं है। अर्थात यह राष्ट्रवाद जागतिक शांति और सहयोग पर विश्वास करनेवाला, दुनिया की गरीब, दुर्बल जनता के साथ अपनत्व दिखानेवाला है। साथ ही स्वतंत्रता, समता तथा बंधुत्व के तत्वज्ञान से ही अखिल मानवजाति के कल्याण की कामना करनेवाला, विश्वबंधुत्व का समर्थन करनेवाला है। यही कारण है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अफ्रिका तथा एशिया में स्थित अन्य गुलाम देशों के स्वतंत्रता–आंदोलन का प्रेरक साबित हुआ तथा स्वतंत्रता के बाद भी विकासशील तीसरे जगत का नेतृत्व अपने आप भारत के पास आया।

जातिधर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद के लिए चुनौतियाँ

अब तक भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में उदित जातिधर्म निरपेक्ष राष्ट्रवाद की संकल्पना को देखा गया। धर्म, जाति, वंश, पंथ, लिंग के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति में भेद न करनेवाले, कानून के सामने हर व्यक्ति को समान मानकर व्यक्तिस्वातंत्र्य प्रदान करनेवाले अपने जीवन का उत्कर्ष कराने का

आश्वासन देनेवाले जातिधर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद को इस मिट्टी में अंकुरित करना हम सब का परम कर्तव्य बनता है। क्योंकि भारत को एक राष्ट्र के रूप में विकसित करना, 'बलसागर भारत होवे, विश्व की शोभा बने।' के स्वप्न को यथार्थ में लाना है तो जातिधर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद ही हमारा संबल बन सकता है। उनके लिए जरूरी है कि हर भारतीय अपने परिवार, गांव, राज्य, धर्म, जाति तथा पंथजनित निष्ठाओं को दूर रखकर सबसे पहले खुद को भारतीय समझे, भारतीय माने। तथा सभी भारतीयों को विधायक राष्ट्रवादी भावना से प्रेरित कराने के लिए जरूरी है कि उन्हें राष्ट्रविकास में योगदान दिलाने के लिए आवाहित किया जाए। परंतु यह आवाहन प्रत्येक के मन को स्पर्श करे, पसंद आए उसके लिए भारत की शासन–प्रणाली में, समाजव्यवहार में हर किसी को अपनी अस्मिता का प्रतिबिंब नजर आना चाहिए, अपने परिवार के उत्कर्ष का स्वप्न दिखाई देना चाहिए। तभी सभी भारतीय इस देश के निर्माण में अपना सहयोग दे पाएँगे। परंतु इस कार्य में काफी कठिनाइयाँ हैं जिनपर हमें विचार करना चाहिए।

1. **धर्मांधता की चुनौती**– जातिधर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद को सफल बनाने के लिए सभी भारतीयों को अन्य सभी संकुचित निष्ठाओं का त्याग करना आवश्यक है। परंतु यहां कुछ संघठन चुनाव तथा सत्ता की राजनीति को सफल बनाने की दृष्टि से लोगों की धार्मिक निष्ठाओं को आमंत्रित करके उनमें पृथकत्व की भावना को पनपा रहे हैं। इस विमतवाद की भावना को अंकित कराने के लिए ये संघठन समाज में अनेक मिथ्या बातों को फैलाते हैं, अवैज्ञानिक तथ्यों का समर्थन करते हैं। इसमें हिंदुत्ववादी विचारों का समर्थक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा संघ परिवार के विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल, अवैज्ञानिक तथ्यों का समर्थन करते हैं। इसमें हिंदुत्ववादी विचारों का समर्थक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा संघ परिवार के विश्व हिंदू परिषद् बजरंग दल, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद तथा भारतीय जनता पक्ष आदि संघठन अग्रणी हैं। चुनाव की राजनीति में सफलता पाने के लिए इन संघठनों का एक कलमी कार्यक्रम है समाज में मुस्लिम–द्वेष फैलाना, इस प्रकार का प्रचार एवं प्रयत्न करना कि हिंदू–मुस्लिम कभी भी मिलजुलकर नहीं रह पाएंगे। ये संघठन किसी भी भ्रष्ट मार्ग को अपनाते हैं, जैसे कि समाज में अफवाहों का प्रचार करना, विविध स्तरों पर झूठ को प्रसारित करने की वैश्विक नीति को अपनाना आदि। दोहरी नीति इन संघटनाओं की नींव है।

ये संघटनाएँ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना को बारबार प्रस्तुत कर रही हैं। हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, की कल्पना को रखकर जातिधर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद को संकुचित कर रहे हैं। ये संघटन हिंदू–मुस्लिम द्वेष फैलाने के लिए निरंतर द्विवराष्ट्रवाद का सिद्धांत रख रहे हैं। इनके अनुसार हिंदू और मुस्लिम संस्कृति अलग है, उनकी जीवन पद्धतियों, उपासना पद्धतियों में अंतर है। यह अंतर इतना बड़ा है कि हिंदू तथा मुस्लिम दो अलग राष्ट्र ही हैं, वे दोनों कभी भी एकत्रित नहीं रह सकते। इसका इलाज यही है कि मुसलमानों को इस देश से निष्कासित किया जाए अथवा उन्हें दोयम स्तर दिया जाए। हिंदू सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और द्विवराष्ट्रवाद का सिद्धांत इन्हीं राष्ट्रविघातक बातों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

हिंदुत्ववादी संघटन होने पर भी इनका वास्तविक उद्देश्य सभी हिंदुओं को एकत्रित करना नहीं रहा है। प्राचीन युग से समाज के अभिजन वर्ग का प्रतिनिधित्व रखनेवाली, दलित–आदिवासी तथा महिलाओं को वैधानिक अधिकारों से वंचित करनेवाली, मनुस्मृति की परंपरा का निष्ठापूर्वक पालन करनेवाली, आज प्रत्यक्ष व्यवहार में व्यापारी, पूंजीपति तथा पुरोहित वर्ग के हितसंबंधों की रक्षा करनेवाले ये संघटन गोहत्या–बंदी रामजन्मभूमि आंदोलन से लेकर आरक्षणविरोधी आंदोलनों तक अनेक उपक्रम करते हैं। कश्मीर प्रश्न के संदर्भ में पाकिस्तान द्वारा उत्पन्न दहशतवाद तथा अतिरेकी कार्रवाइयां भारत के लिए सिरदर्द बनी हैं। इस संदर्भ में कुछ मुस्लिम लोग तथा सघटन भी पाकिस्तान का स्पष्ट निषेध करने से कतराते हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में तालिबान सरकार के नाम से अफगानिस्तान में जो जुल्मी शासन सत्ता में आया उसने दुनिया को दिखा दिया कि उग्र धर्मांध राष्ट्रवाद कितना धोखादायक होता है। वह जागतिक शांति के लिए खतरा तो पैदा करता ही है साथ ही अपने देश के नागरिकों पर कई तरह से जुल्म भी ढाता है। तालिबान शासन ने स्त्रियों की शिक्षा, नौकरी, पहनावा तथा घर से बाहर निकलने के अवसरों पर बंधन डालकर मध्ययुगीन बर्बरता का परिचय दिया है। भारत की एकता पर भी इसका असर हो रहा है। कश्मीर की अतिरेकी

कार्रवाइयों में उनका सक्रिय सहयोग है। सौभाग्य से आम अफगान जनता ने ऐसे जुल्मी राष्ट्रवाद को अधिक आश्रय नहीं दिया है।

भारत के कुछ गिने–चुने मुस्लिम संघठनों के मन में आज भी सात सौ वर्ष पुराने मुस्लिम शासन की यादें ताजा हैं कि एक समय हम यहाँ के सत्ताधीश थे परंतु आज अनेकों में से एक हो गए हैं, यह भावना भी कुछ मुस्लिमों को बेचैन बनाती है। भारतीय समाज एकात्म होने पर भी यह बात भारतीय राष्ट्रवाद के निमार्ण में बाधक बनी।

वर्ष 1925 से संघठित रीति से कार्यरत राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा परिवार को, 1982 तक न तो भारतीय जनमानस में स्थान नहीं मिला तथा न ही राजनीति में ही सफलता मिली। शाहबानो अभियोग का आधार लेकर उन्होंने प्रचार करना प्रारंभ किया कि सरकार द्वारा मुस्लिम मूलतत्ववादियों का लांगूलचालन (नोट : शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है) किया जा रहा है। यह भी कहना शुरू किया कि हिंदुत्ववादियों के विरोधकों का धर्मरिपेक्षतावाद नकली है। चुनाव में सफल होने के लिए हिंदुत्ववादियों ने रामजन्मभूमि आंदोलन शुरू किया। सामाजिक फूट तथा दंगों का कारण बने राष्ट्रविघातक रामजन्मभूमि आंदोलन ने चुनाव में हिंदुत्ववादियों को तात्कालिक सफलता तो मिली परंतु हिंदू धर्म के उदारमतवादी रीतिरिवाज, भक्तिसंप्रदाय की सर्वसमावेशक परंपरा, राम की एकवचनी, एकपत्नीव्रती प्रतिमा आदि से सरोकार न रखनेवाले हिंदुत्ववादियों को राम का सिक्का प्रयुक्त करने पर भी व्यापक जनाधार नहीं मिला। आज भी भारतभर में जो अल्प मतदान होता है, उसमें से 25 प्रतिशत से भी अधिक जनाधार भा.ज.प. को प्राप्त नहीं हुआ। धर्मनिरपेक्ष मतों की आपसी फूट के कारण ही आज वे सत्ता में दिख रहे हैं। बहुसंख्यक उदारमतवादी हिंदुओं ने अभी तक प्रखर हिंदुत्वाद को स्वीकार नहीं किया है, न ही स्वीकारने की संभावना है। सर्वसामान्य मुसलमान भी परमसहिष्णु तथा उदारमतवादी रहा है। उसकों मुल्ला–मौलवी के जमातवादी राजनीति से कोई सरोकार नहीं है। रोजगार, शिक्षा तथा गरीबी उसके भी प्रश्न हैं। दोनों धर्मों के उग्र जमातवादी उनके अपने धर्मों में अल्पसंख्यक ही हैं परंतु आक्रामक कार्य में मग्न हैं। कठिनाई यह है कि सर्वसामान्य मनुष्य उसके रोजमर्रा के प्रश्नों को सुलझाने में व्यस्त है। दोनों धर्मों में स्थित इस सायलेंट मेजॉरिटी को भावनिक प्रश्नों की तरफ दुर्लक्ष

करने के लिए प्रवृत्त कराकर, रोजगार, पानी, आरोग्य सुविधा, गरीबी, महंगाई आदि जीवन की आवश्यक बातों के लिए संघर्षरत कराना चाहिए। इससे धर्मों के बीच की दीवारें ढह जाएँगी और धर्मनिष्ठा की अपेक्षा राष्ट्रनिष्ठा महत्वपूर्ण साबित होगी। यह सब कैसे संभव होगा, यही धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद के लिए बड़ी चुनौती है।

2. **जाति पर आधारित राजनीति–** माना जा रहा था कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद आधुनिक मूल्यों तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों के प्रसार से जातिभेद की दीवारें स्वाभाविक रूप से ढह जाएंगी। परंतु चुनाव की राजनीति में इक्ट्ठा मतों को महत्व मिला तथा जाति के आधार पर लोगों को आवाहन करना और इक्ट्ठा मत पाना आसान रहा। इसी से स्वातंत्रयोत्तर युग में जाति पर आधारित राजनीति को महत्व मिला। अनेक लोगों का विचार था कि तथाकथित निम्न जाति के लोगों का जातीवाद आवश्यकतानुसार योग्य माना जाना चाहिए। परंतु आज के युग में अन्य अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन जाति के लोगों की अस्मिता जागृत होने से उनमें बड़े पैमाने पर राजनीतिक आकांक्षा का निर्माण हुआ और वह उचित भी है। परंतु इस जागृत राजनीतिक आकांक्षा को भले–बुरे मार्ग से पूर्ण करना और वैध–अवैध मार्ग से सत्ता में आना ही इन जातियों के विकास के लिए आवश्यक है, यह सिद्धांत आज प्रचलित हो रहा है और यह धोखादायक है। यह सिद्धांत काफी खींचा गया है। इसके आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है कि मनुवादी माने जानेवाले, दलितविरोधी भा.ज.प. जैसे जातीयतावादी पक्ष के साथ भी वक्त आने पर सत्ता के लिए समझौता करना गैर नहीं है।

ग्रामीण इलाकों में आज भी जातीय अस्मिता अधिक तराशी नहीं गई है। शहरों में भी सिर्फ आधुनिक जगत में वह कटुता कम होने का आभास होता है क्योंकि व्यवहार में जातीय अस्मिता को कायम रखना कठिन होता है। परंतु उसमें इन जातीय अस्मिताओं से बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अतः हमारा कार्यक्रम 'जातिविहीन राजनीति' होना चाहिए।

3. **स्त्री–पुरूष विषमता**– प्राचीन युग में मनुस्मृति या शरीयत जैसे धार्मिक ग्रंथों के आधार पर पुरूषप्रधान युग में स्त्रियों पर निरंतर अन्याय होता आ रहा है। यहाँ स्त्रियों के आर्थिक, मानसिक तथा शारीरिक शोषण का विस्तृत विवेचन संभव नहीं है। परंतु स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का अवसर मिलना आवश्यक था। वह आज भी नहीं मिल रहा है। स्त्री को लिंगभेद से मुक्त सामाजिक सम्मान मिलना चाहिए था जो नहीं मिल रहा। पुरूष के द्वारा स्त्री का विविध रूपों में शोषण होता है। इस प्रश्न पर काम करनेवाले अनेक स्त्री–वादी संघटनों ने आज इसके अनेक पहलू प्रस्तुत किए हैं। भारत में म.फुले, ईष्वरचंद्र विद्यासागर, सावित्रीबाई फुले, राजा राममोहन रॉय आदि अनेक क्रांतिकारी समाजसेवकों के अथक प्रयत्नों से गत सदी में निश्चित प्रगति हुई है। परंतु सौ प्रतिशत स्त्री–पुरूषों की समता को हासिल करने के लिये हमें काफी अंतर तय करना है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि स्त्री–पुरूष विषमता के कारण स्त्रियों का अलग (विभेदवादी) आंदोलन शुरू हुआ है। लेकिन ऐसा भी लगता है कि इसके प्रारंभ हुए बिना इस प्रश्न की तरफ पुरूष वर्ग गंभीरता से नहीं देखेगा। परंतु यह वास्तविकता है कि समाज में 50 प्रतिशत स्त्रियाँ हैं, उनके शरीरिक तथा बौद्धिक विकास के अवसरों को नकारकर, निर्णय–प्रक्रिया में उनके सहयोग को नकारकर हम समाज की प्रगति को अवरुद्ध कर रहे हैं। भारत को बलवान राष्ट्र बनाने की दृष्टि से आज हम आधी जनसंख्या के सहयोग को नकार रहे हैं यह उचित नहीं है। जातिधर्मरिपेक्ष राष्ट्रवाद के सामने यह बहुत बड़ी समस्या है। उत्तरोत्तर इस बारे में प्रगति की दृष्टि से परिवार, सार्वजनिक जीवन और राजनीति में अधिकाधिक महिलाओं के यशस्वी सहयोग की दृष्टि से हमारे प्रयत्न अपेक्षित हैं।

4. **आरक्षण का प्रश्न तथा सामाजिक न्याय–** भारतीय समाजव्यवस्था के द्वारा हजारों वर्षों तक अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति तथा आदिवासी समूहों पर अन्याय किया गया है। उन्हें निम्न जाति का स्तर दिलाकर उन्हें गौण समझकर उनके साथ सामाजिक अन्याय किया गया है। साथ ही वास्तविकता में सभी प्रकार के उत्पादन–साधनों पर उनका स्वामित्व नकारकर और उनके श्रमों को चुराकर एक तरह का आर्थिक शोषण किया गया है। कहा जा सकता है कि वास्तव में हजारों वर्ष तक भारतीय समाजव्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था तथाकथित उच्चवर्गीय जाति के लोकसमूहों के लिए आरक्षित थी। हजारों वर्षों के इस पाश से तथाकथित पिछड़ी जाति के समझे जानेवाले लोगों की आर्थिक, मानसिक

तथा प्रशिक्षणात्मक वृद्धि नहीं हो पाई। स्वतंत्रता आंदोलन के युग से ही डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने इन गुटों के सभी प्रकार के अधिकारों के प्रश्न सुलझाने के निरंतर प्रयास किए। डॉ. आंबेडकरजी ने भारत के शोषित समाज का संघटन निर्माण करके इन गुटों को आत्मभान दिया, अधिकारों के संघर्ष के लिए प्रवत्त किया, यह एक ऐतिहासिक घटना है। यह माना जाता है और यह सच भी है कि भारत के सभी प्रकार के शोषितों के आंदोलन के प्रतीक 'बाबासाहेब' हैं। बाबासाहेब ने स्वतंत्रता आंदोलन के केन्द्र में रहने वालों से बार–बार पूछा कि कल के स्वतंत्र भारत में इन परंपरागत रूप में अन्याय सहनेवाले लोकसमूह का कौन–सा स्थान होगा। एक दृष्टि से यह प्रश्न उठाकर बाबासाहब ने स्वतंत्रता आंदोलन के ध्येय तथा उद्देश्यों को सही मार्ग पर रखा। बाबासाहब का यह बहुत बड़ा योगदान रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बाबासाहब ने भारतीय संविधान के प्रारूप समिति का अध्यक्ष स्थान स्वीकार किया तथा शोषितों के आंदोलन की माँगों को शाश्वत संवैधानिक स्थान प्रदान किया। इन्हीं में से एक है आरक्षण का तत्त्व।

पीढ़ी दर पीढ़ी अन्याय होने से लोग पिछड़ गए हैं। जिसके कारण आज विषम सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण हुआ। पहले से ही विषम सामाजिक स्थिति में पिछले लोगों को अन्यों के बराबर स्थान दिलाने के लिए दिया गया विशेष अवसर अर्थात 'आरक्षण'। सामाजिक न्याय का अवलंब कराकर समता प्रस्थापित कराने वाली नीति अर्थात आरक्षण।

स्वतंत्रता के बाद 55 वर्षों में आरक्षण की नीति से शोषितों का सामाजिक तथा आर्थिक स्तर बढ़ गया है। परंतु उसमें अपेक्षित प्रगति नहीं हुई है, कुछ त्रुटियाँ भी रही हैं। आरक्षणनीति की सफलता–असफलता तथा अगली दिशा आदि की चर्चा इस छोटी–सी किताब में संभव नहीं है। लेकिन सिर्फ दो–तीन महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार करना जरूरी है।

1. स्वतंत्रता के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था शीघ्रता से विकसित हुई, बडे पैमाने पर रोजगार–निर्मिति होती रही। लेकिन उसपर अधिकार जताने के लिए

शिक्षित–शोषित तथा पिछडे बहुत कम अनुपात में उपस्थित थे। अतः 1970 तक इस देश में एक भी बड़ा आरक्षण विरोधी आंदोलन नहीं हुआ।

2. 1970 के बाद शिक्षा में प्रगति करने से शोषित युवक नौकरी में अपना अधिकार जताने लगे और तभी इस देश के उच्चवर्गीय मानसिकता युक्त लोगों ने आरक्षण के खिलाफ आंदोलन शुरू किए। व्यवहार में कुछ तांत्रिक कठिनाईयों का निर्माण करा के, नौकरियों में विविध सरकारी संस्थाओं में अनुसूचित जातियों का अनुशेष बना रहा है। आज इस समस्या की तरफ गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है।

3. आज शासकीय नौकरियों में भर्ती पूर्णतः ठप हुई है तथा निजी क्षेत्र में आरक्षित पदों का प्रावधान नहीं है।

4. **वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के युग में रोजगार–**उपलब्धि कम हो रही है अतः आरक्षण की नीति भी ज्यादा उपयोगी साबित नहीं हो रही है।

इसलिए अब अन्य पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति तथा आदिवासियों के आर्थिक उत्थान के लिए आरक्षित पदों के अलावा और भी विचार करना जरूरी हो गया है। निजी क्षेत्र में आरक्षण, भूमि का बंटवारा करके भूमिहीनों को जमीन का अधिकार दिलाना, सस्ते में ऋण उपलब्ध कराना आदि संवैधनिक उपायों के जरिए तथा व्यवसाय और सहयोगी संस्था निर्माण में अनुसूचित युवकों को विशेष अवसर दिलाकर इसपर अमल किया जा सकता है। अर्थात यह स्थूल विचार तथा दिशा हो सकती है।

यह सब करना ही होगा। क्योंकि अगर पिछडे समूहों को एहसास हुआ कि यह राष्ट्र मेरा है, उसके लिए मुझें भी स्वार्थ का त्याग करना चाहिए, यहां की सरकार तथा समाज मेरी आर्थिक सामाजिक स्थिति के बारे में काफी संवेदनशील है, तो ही वह जातिधर्मनिरपेक्ष भारतीय राष्ट्रवाद का दूत बनेगा।

5. **आर्थिक विषमता–गरीबी, महँगाईः** अगर प्रश्न उठाया जाए कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व द्वारा अपनाई गई मिश्र अर्थव्यवस्था की नीति से इस देश का आर्थिक विकास हुआ या नहीं, तो उसका उत्तर होगा कि

हुआ है। लक्षणीय गति से हुआ है। ग्रामीण, शहरी, दलित, आदिवासियों का जीवन स्तर निश्चित बढ़ा है। अब सवाल यह है कि अर्थव्यवस्था के विकास से जो उत्पादन बढ़ा है उसका समान बंटवारा हुआ या नहीं? इसका उत्तर नकारात्मक है। अर्थव्यवस्था की वृद्धि से बढ़े उत्पाद तथा पूंजी का बहुत बड़ा हिस्सा अधिक अमीरों के ही पल्ले पड़ा। इससे अमीर–गरीब की खाई को कम करने का जो समाजवादी अर्थव्यवस्था का मूल था, उस दिशा में हमारी आवश्यक प्रगति नहीं हो पाई। अतः हमारे यहाँ आर्थिक स्तर की दृष्टि से ग्रामीण–शहरी, गरीब–अमीर, नवमध्यम वर्ग तथा श्रमकर आदि विविध भेद पैदा हुए हैं। **श्रम–मूल्य और ज्ञान–मूल्य के बीच की खाई तो अत्यंत विस्तृत बनी है।** इसी कारण हमारे यहाँ शहरी चकाचौंध और देहाती गंदी बस्ती, अमीरों की ऐय्याशी और झोपडपट्टियों के अस्तित्व के लिए संघर्ष, संघटित नौकरशाहों की हजारों की आमदनी और असंघठित श्रमकारों का अपर्याप्त वेतन, कारखानों के उत्पादनों पर अमर्यादित मुनाफेखोरी और खेती–उत्पादनों की गिरती कीमतें जैसी अनेक विसंगतियाँ पैदा हुई हैं। भ्रष्टाचार तथा दो नंबर की कमाई पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रह पाया। अतः मुद्रा–स्फीति और महँगाई ये दोनों भारतीय अर्थव्यवस्था के स्थायी घटक बने हैं। इस पुस्तिका में आर्थिक स्थिति की विस्तृत चर्चा संभव नहीं है। लेकिन एक तरफ दूरदर्शन के माध्यम से चमक–दमक भरे, जगमगाते विलासी जीवन का स्वप्न झोपड़पट्टियों में फैल रहा है , लेकिन वास्तविक जीवन में गंदगी और कंगाली है। इससे गरीबों में मानसिक तनाव बढ़ रहा है जो भारतीय राष्ट्रवाद के संवर्धन की दृष्टि से उचित नही है। इसे ठीक करना तथा उसके लिए संघर्ष करना जरूरी है।

6. **बेरोजगारी–** बेरोजगारी का प्रश्न भी दिन–ब–दिन उग्र रूप धारण कर रहा है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि कराने में सक्षम युवकवर्ग नौकरी की खोज में दर–दर, दिशाहीन भटक रहा है। उसका मानसिक विश्व ध्वस्त हो रहा है। वह अलगाववादी आंदोलनों का आधार बन रहा है। भारत–राष्ट्र का मूलभूत आधार स्तंभ ही अगर इस प्रकार ध्वस्त, दिशाहीन रहा तो भारतीय राष्ट्रवाद का जतन तथा वर्धन कैसे संभव होगा? आर्थिक नीति तय करते समय रोजगार–निर्मिति का मुद्दा अहम होना चाहिए।

7. **भ्रष्टाचार का सार्वत्रीकरण तथा विधिवत व्यवस्था पर लोगों का अविश्वास–** आज भ्रष्टाचार शिष्टाचार बना है। हमारे समाज में भ्रष्टाचार का स्वरूप बहुअंगी और बहुआयामी रहा है। उसके वर्णन के लिए एक बड़ी किताब भी काफी नहीं है। लेकिन उसके वर्णन की आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि भ्रष्टाचार की रसभरी कथाएँ समाचारपत्रों के प्रथम पृष्ठ पर, गाँव की चौकी पर तथा शहरों के चौराहों पर चर्चा में रहती है। भ्रष्टाचार के साथ सिफारिशी तथा चाचा–भतीजावाद भी रहा है। इसमें हमारी दृष्टि से यह गंभीर बात है कि लोगों का विधिवत व्यवस्था पर तथा नियमित व्यवस्था पर जो विश्वास था वह समाप्त हो रहा है। टेढ़ी अंगुली के बिना घी नहीं निकाला जाता अथवा कागज पर वजन रखे बिना वह आगे नहीं बढ़ेगा आदि बातों में लोगों को दृढ़ विश्वास होने लगा है। यह धोखादायक है। राष्ट्र–निर्मिति के लिए अगर लोगों में राष्ट्रविषयक आत्मीयता का निर्माण करना है तो आवश्यक है कि उनके मन में व्यवस्था को लेकर पक्का विश्वास बढ़े। उन्हें ये महसूस हो जाए कि उनका काम नियमों को अपनाने से ही होगा। अगर ऐसा नहीं है तो भागम्–भाग करते हुए विधि–निषेध को त्यागकर हर कोई अपना उल्लू सीधा करने में व्यस्त दिखाई देगा और भारतीय राष्ट्रवाद के संवर्धन की दृष्टि से यह बात उचित नहीं है।

8. **न्याय–दान में विलंब तथा न्याय–प्रक्रिया पर अविश्वास–** जनतंत्र में न्यायालय ही सर्वसामान्य लोगों का अंतिम आधार होता है। लोगों के मन में विश्वास होना जरूरी है कि उनपर हुए अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने से, समय पर, कानून के मुताबिक उन्हें न्याय मिलेगा साथ ही अगर कोई ठीक बरताव न कर रहा हो, कानून को तोड़ रहा हो तो उसे सजा मिलती है आदि इस प्रकार का चित्र दिखाई देना चाहिए। लेकिन आज दोनों ही नहीं हो रहे हैं और यह दोहरा पेंच है।

आज माना जाता है कि न्याय मिलने में देरी या नयाय देने को नकारना। आज भारतीय न्यायालय में हजारों मुकदमें सालों से चलाए जा रहे हैं। सामान्य अभियोगार्थी कागजात, झेरॉक्स, एफिडेविट, यात्रा–खर्च तथ वकीलों की फीस के चक्र में पीसा जा रहा है। अगर किसी का बदला लेना हो तो जरूरी नहीं कि उसे किसी कारावास भेजा जाए। उसे न्यायालय के झंझट में फँसाना ही काफी है।

माना जाता है कि बोर्फार्स घोटाले से आज के राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार का युग प्रारंभ हुआ। बाद में कितने सारे घोटाले, स्कैंडल्स सामने आए। उनमें रुपयों की संख्या बढ़ती गई। परंतु आज तक उस घोटाले में फँसा कोई सरकारी अधिकारी अथवा राजनीतिक नेता जिसे न्यायालय ने दोषी ठहराया है, उसे कैद हुई हो, ऐसा सामने नहीं आया। न्यायालयी प्रक्रिया का पेचीदापन तथा देरी एकसाथ गरीबों को अपाहिज बना रही है तथा साथ ही धवोत्मत्त सत्ताधीशों को बाल–बाल बचा रही है। इसमें तुरंत सुधार हुए बिना लोगों का कानून के राज्य पर विश्वास नहीं बढ़ेगा।

9. वैध **आंदोलनों की उपेक्षा–** स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद समाज के विविध स्तरों पर अनेक संघठन कार्यरत हैं। लोगों को संघटित करके उनके रोजमर्रा के प्रश्नों को सरकार के सामने रख रही हैं। इसमें विपक्षों के साथ संसदबाह्य संघठन भी शरीक हैं। इन पक्ष संघटनों ने विविध प्रकार के आंदोलनों से स्पष्ट किया है कि विशिष्ट प्रश्नों के संदर्भ में संबंधित जनमत उनके साथ है। परंतु ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आ रहा कि जिसमें शांतिपूर्ण वैध आंदलनों को सरकार ने विधायक प्रतिक्रिया दी हो और उनकी न्यूनतम माँगे पूरी की हों। अनेक बार प्रश्नों की गंभीरता को देखकर, सरकार को परिस्थितिवश कोई निर्णय लेना हो तो वह कुछ समय बाद इस तरीके से लिया जाता है कि संबंधित संघटना को उससे कोई लाभ नहीं होगा।

इससे आंदोलकों का वैध आंदोलनों पर रहा विश्वास समाप्त हो जाएगा। क्योंकि चित्र यही है कि हिंसा पर विश्वास करके, पत्थर उठाकर अगर छोटा–सा गुट भी रास्ते पर आ जाए, वह पाँच–छह दुकानों, बस की खिडकियों को तोड़े तो ऐसी घटनाओं को प्रसारमाध्यमों द्वारा काफी प्रसिद्धि मिलती है। और सरकारी मशीनरी भी उसकी ओर तुरंत ध्यान देती है। दूसरी तरफ दस–दस हजार लोगों वाले मोर्चे को भी अखबारों के हाशिए में स्थान नहीं मिलता, मंत्री–महोदय से मुलाकात नहीं हो पाती, मार्चे की माँगों को अनसुना किया जाता है। यह स्थिति हिंसाचार तथा हिंसा पर विश्वास करनेवाले आंदोलनों को प्रोत्साहित करती है। सरकार को इसकी ओर ध्यान देना जरूरी है।

6. वैश्वीकरण – राष्ट्रवाद के लिए चुनौती

उदारीकरण निजीकरण तथा वैश्वीकरण की अर्थनीति ने भारत सहित अन्य विकासशील राष्ट्रों के सामने कई गंभीर समस्याएँ पैदा की हैं। इस नीति की वजह से मजदूर, किसान, बेरोजगार युवक, आदिवासी समूह, महिलाएँ ऐसे कई समाजगुट आघात सह रहे हैं तथा रोजमर्रा की जिंदगी में कठिनाइयाँ झेल रहे हैं। इस नीति की संपूर्ण चर्चा इस पुस्तिका का विषय नहीं है, लेकिन वैश्वीकरण की वजह से विकासशील राष्ट्रों की संप्रभुता को जो खतरा पैदा हुआ है वह चिंता का विषय है।

विश्व बैंक अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से मुट्ठीभर पश्चिमी राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए गैट एग्रीमेंट जैसे अन्यायी कानून के द्वारा गरीब विकासशील देशों को अपनी–अपनी अर्थव्यवस्था को खुली करने के लिए मजबूर कर रहे हैं। कर्जा और सूद के चक्कर में गरीब देशों को फँसाकर, पश्चिमी देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद बेचने के लिए विकासशील देशों के बाजारपैंठों को इस्तेमाल किया जा रहा है।

यह एक अलग तरीके का आर्थिक साम्राज्यवाद ही है। किसी देश के साथ युद्ध किए बगैर ही उस देश की आर्थिक निर्णय प्रक्रिया अमेरिका जैसे देश अपने हाथ में ले रहे हैं। उपभोगवाद तथा भ्रष्टाचार के चलते इन देशों का नेतृत्व भी अमेरिका और उसके दास अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों के सामने घुटने टेक रहे हैं। यह सवाल बहुत गंभीर है और उसने गरीब देशों के स्वयंनिर्णय के अधिकार को, उनकी संप्रभुता को तथा इन देशों के राष्ट्रवाद को गंभीर चुनौती दी है। ऐसे देशों की जनता को ही अब सब भेदों को परे रखकर, इस आर्थिक साम्राज्यवाद का मिलकर मुकाबला करना होगा और समानता पर आधारित समाजवादी अर्थनीति को वास्तव में स्थापित करने के प्रयास करने होंगे।

7. कौन राष्ट्रभक्त–कौन राष्ट्रद्रोही?

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा संघ परिवार के संगठनों की तरफ से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कल्पना को तूल दिया जा रहा है। उसके अंतर्गत ''हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व'' इस तरह की समाज में दरार पैदा करने वाली कल्पनाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है। राष्ट्रीयत्व इस तरह के किसी धर्म या वंश के आधार पर निर्भर नहीं रह सकता है।

एक तो हिंदुत्व की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। सिख तथा जैन संप्रदाय के लोग खुद को हिंदू कहलाने से कतराते हैं। दलित तथा आदिवासी समूहों को न तो तथाकथित हिंदू धर्म के ठेकेदारों ने अपनाया, और ना ही उनको कभी हिंदू धर्म के बारे में लगाव रहा।

सिर्फ मुस्लिम समुदाय के प्रति द्वेष भावना फैलाने के सुनियोजित नीति के तहत 'हिंदुत्व ही राष्ट्रीयत्व' का ऐलान किया जाता है। ऐसी स्थिति में इस देश के राष्ट्रप्रेमी की परिभाषा में आप किस–किस को शामिल करेंगे और किस–किस को नकारेंगे। यह ऐसी घिनौनी चाल है जिसके चलने से यह देश फिर एक बार विभाजन के कगार पर उतरेगा। जो जन्म से हिंदू है वह अपने आप राष्ट्रप्रेमी–राष्ट्रभक्त कैसे हो सकता है? किसी भी समझदार नागरिक के मन में यह सवाल पैदा होगा कि –

1. तथाकथित निम्न जाति के प्रति मन में नीचता भाव रखनेवाला,
2. रिश्वतखोरी को उत्तेजना देनेवाला तथा समाज में गुंडागर्दी करनेवाला,
3. धंधे में बेशुमार नफा कमाकर गरीबों को लूटनेवाला,
4. अपनी ही बहू–बेटियों पर पुरूषत्व का रोब जमाकर महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित रखनेवाला,

5. देश में हजारों लोग झोपड़ी या फुटपाथ पर नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर हैं लेकिन फिर भी खुद के पास हजारों वर्ग फुट के भव्य मकान रखनेवाला,

6. देश में लाखों भूमिहीन खेतमजदूर दो वक्त के खाने के लिए मोहताज होने पर भी सैकड़ों एकड़ जमीन पर कब्जा रखनेवाला,

7. भ्रष्ट मार्गों से लाखों की जायदाद कमाकर, उसपर आयकर भी न जमा करनेवाला तथा लगान बचाने के लिए खुद को अनिवासी भारतीय (एन.आर. आई,) घोषित करने वाला,

8. एक नागरिक के नाते अपने कर्तव्य से मुंह मोड़नेवाला, काम टालनेवाला तथा राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुँचानेवाला,

इनमें से एक या अनेक दुर्गुणों से लिप्त होकर भी किसी व्यक्ति को, यदि सिर्फ इसलिए राष्ट्रप्रेमी या राष्ट्रभक्त माना जाए कि वो वहां के बहुसंख्य धर्म में जन्मा है तो ऐसी स्थिति में उस समाज को विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

दूसरी तरफ अल्पसंख्यक समुदाय में जन्म लेनेवाला कोई भी व्यक्ति चाहे कितना ही भला क्यों न हो, संविधान पर विश्वास रखनेवाला हो, उसकी तरफ हमेशा संदेह की दृष्टि से दखेंगे तो यह बिल्कुल उचित नहीं होगा।

हमें स्पष्ट रूप से यह कहना चाहिए कि गलत कृत्य करनेवाला बुरा है, चाहे वह किसी भी धर्म का हो। गुंडों की कोई जाति या धर्म नहीं होता उनका धर्म तो केवल गुंडागर्दी होता है।

दूसरी तरफ हमारे संविधान पर विश्वास रखनेवाला, कानून को माननेवाला, अपने साथ–साथ हर व्यक्ति के चैन से रहने के अधिकार को मानने वाला हर व्यक्ति राष्ट्रभक्त है फिर चाहे वो हिन्दू हो या मुस्लिम और राष्ट्रभक्त की यही भूमिका तर्कसंगत है।

8. राष्ट्रवाद और राष्ट्र सेवा दल

राष्ट्र सेवा दल के पंचसूत्र है जनतंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण। इनमें से किसी का भी अलग–अलग विचार नहीं किया जा सकता। व्यवहार में ये पाँचों तत्व एक–दूसरे की पुष्टि करने के बाद एक दूसरे को समर्थ बनाते हैं।

राष्ट्र सेवा दल को भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदारी की बहुत ही गौरवास्पद विरासत मिली है। इसी आंदोलन में विकसित जाति–धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की संकल्पना पर राष्ट्र सेवा दल का पूरा विश्वास है। भारत को अगर जनतांत्रिक समाजवादी राष्ट्र बनाना है तो जाति–धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की एकमात्र दिशा में चलना आवश्यक है। लेकिन राष्ट्र सेवा दल को जो राष्ट्रवाद अभिप्रेत है वह 'सजग राष्ट्रवाद' है।

आक्रामक राष्ट्रवादी भावना में कभी–कभी व्यक्ति को गौणत्व किया जाता है। उसमें यह उम्मीद की जाती है कि व्यक्ति समाज या देश को सर्वश्रेष्ठ मानकर राष्ट्र के विकास के लिए स्वंय को भूलकर राष्ट्र निर्माण के कार्यों में लगा रहे। लेकिन राष्ट्र सेवा दल यह मानता है कि हर व्यक्ति को अपना व्यक्तित्व विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए और एक–एक व्यक्ति समर्थ बने तो राष्ट्र अपने आप बलशाली बनेगा। इसका अर्थ है राष्ट्र सेवा दल व्यक्तिवाद और समूहवाद में एक संतुलन की अपेक्षा करता है।

सेवा दल का राष्ट्रवाद विश्व के अन्य देशों के नागरिकों के प्रति द्वेष–भावना नहीं सिखाता। राष्ट्रवाद व्यक्तियों की क्रमशः संकुचित निष्ठाओं को त्यागकर अपने विचारों को व्यापक बनाने की सीख देता है। जिस तरह मेरा परिवार, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरा प्रांत ऐसी छोटी निष्ठाओं को त्यागकर 'मेरा राष्ट्र' की व्यापक भावना का पनपना जरूरी है, ठीक उसी तरह अन्य देशों के गरीबों, किसानों, कामगारों के प्रति मेरी उतनी ही आस्था होनी चाहिए। आगे चलकर एक दिन दुनिया के सभी पिछड़े शोषित समूहों को मिलकर ऐसी नीति के लिए

संघर्ष करना होगा, जिसके चलते दुनिया के हर नागरिक को सुख–चैन की जिंदगी नसीब हो।

इस तरह से राष्ट्र सेवा दल विश्व बंधुत्व और राष्ट्रवाद में भी एक तरह का संतुलन चाहता है और ये एक दूसरे के पूरक हो ऐसी इच्छा रखता है।

कई लोग ऐसा मानते हैं कि यदि राष्ट्रवादी भावना को बढ़ावा देना है तो व्यक्ति को अपनी अन्य हर तरह की निष्ठा को त्यागना होगा। जिस तरह मूर्तिकार एक साँचा बनाकर उसमें से एक ही प्रकार की मूर्तियाँ बनवाता है ठीक उसी तरह देश में सभी लोगों को एक ही सांचे में ढालकर उनकी अन्य सभी पहचानों को मिटाकर ही राष्ट्रवाद बढ़ेगा। कई लोग इसे कढ़ाई सिद्धांत भी कहते हैं। सेवा दल को यह अभिप्रेत नहीं है।

सभी लोगों के गाँव, प्रांत, भाषा, संस्कृति आदि भिन्न–भिन्न हैं। उनका अपना अलग महत्व भी होता है। उसका अभिमान दिल में रखकर भी व्यक्ति राष्ट्रवादी बन सकता है। 'विविधता में एकता' का यही तो अर्थ है। इस बारे में हम छोटे वर्तुल में बड़ा वर्तुल, और बड़े वर्तुल में उससे भी बड़ा वर्तुल ये कल्पना कर सकते हैं। गाँव, प्रांत, भाषा ये सभी छोटे–छोटे वर्तुल हैं और उन सभी को नापने वाला बड़ा वर्तुल है राष्ट्र। सही दिशा में विचार करने की क्षमता रखें तो इसका संतुलन हो सकता है इसे ही कई लोग 'सैलड़ बाउल' सिद्धांत कहते हैं। इसके बाद एक दिन ऐसा भी आएगा कि विभिन्न राष्ट्र के छोटे–छोटे वर्तुलों को नापनेवाले मानवता या विश्वबंधुत्व का बड़ा वर्तुल स्वीकार किया जाएगा। जो हर मानव को ही नहीं बल्कि हर पशुप्राणी को हर सजीव को जीने का उचित अवसर प्रदान करेगी। सेवा दल सैनिक राष्ट्रवाद की तरफ इस नजरिए से देखता है।

हमें इसी दिशा में काम करना है। हमें भारत राष्ट्र को बलवाल सामर्थ्यशील बनाना है इसलिए नहीं कि हमें किसी दूसरे राष्ट्र पर हमला करके उसे गुलाम बनाना है बल्कि इसलिए कि भारतीय इतिहास की अद्वितीय परंपरा तथा

उदारमतवादी परंपरा को दुनियाभर में प्रस्तुत करने के लिए 'विकास के लिए शांति' के सूत्र को दुनिया में प्रतिष्ठा देने के लिए और उपभोगवाद को समाप्त करके चिरस्थायी विकासनीति को दुनिया भर में अपनाने के लिए। इसलिए हमें भारत को बलशाली बनाना है और इस तरह की अर्थनीति का समर्थन करना है जिसमें दुनिया के हर आदमी की आवश्यक जरूरतें पूरी हों । और राष्ट्र सेवा दल को पूरा भरोसा है कि भारत ऐसा कर सकता है।